श्री लघ्वाचार्यरचित

त्रिपुराभारतीस्तवः

सटीकः

मुनिश्री वैराग्यरतिविजयजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री विजयमहोदयसूरिग्रंथमाला-९

श्रीत्रिपुराभारतीस्तवः

(सटीकः)

❀ सम्पादकः ❀
तपागच्छाधिपत्याचार्यदेवेशश्रीमद्
विजयरामचन्द्रसूरीश्वजी म.सा. के शिष्यरत्न
मुनिश्रीवैराग्यरतिविजयः

✚ ला.भार्थी ✚
श्री हसमुखलाल चुनीलाल मोदी चेरीटेबल ट्रस्ट
तारदेव रोड,
मुंबई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री विजयमहोदयसूरिग्रंथमाला-९

ग्रन्थनाम	:	त्रिपुराभारतीस्तवः
विषय	:	स्तोत्र
टीका	:	१. ज्ञानदीपिका आ. श्री सोमतलिकसू. २. पञ्जिका अज्ञात
सम्पादक	:	मुनिश्री वैराग्यरतिविजयजी
पूर्वसम्पादक	:	पं. श्री लक्ष्मणदत्तशास्त्री, श्रीजिनविजयजी
प्रकाशक	:	प्रवचन प्रकाशन, पूना
आवृत्ति	:	प्रथम, २०५९
मूल्य	:	रु. ६०.००
पत्र	:	४०+८०
© : PRAVACHAN PRAKASHAN, 2003

प्राप्तिस्थान

पूना	:	**प्रवचन प्रकाशन** ४८८, रविवार पेठ, पूना-४११००२ फोन : ०२०-४४५३०४४
अहमदाबाद	:	**सरस्वती पुस्तक भंडार** हाथीखाना, रतनपोल, अहमदाबाद-३८०००१ फोन : ०७९-२५३५६६९२
अहमदाबाद	:	**राजेन्द्रभाई घेलाभाई शाह** ८, भावि एवेन्यू, मर्चन्ट पार्क सोसायटी पालडी, अहमदाबाद-३८०००७ फोन : ०७९-२६६०२३९३
मुद्रण	:	राज प्रिन्टर्स, पूना
अक्षरांकन	:	विरति ग्राफिक्स, अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

तपागच्छाधिराज पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजयरामचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.** के प्रधान पट्टधर सुविशाल गच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजयमहोदयसूरीश्वरजी म. सा.** के पुण्यनाम की स्मृति में ट्रस्ट की और से अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे है । **'श्रीविजयमहोदयसूरीश्वरजी म.'** ग्रन्थमाला का यह सातवाँ पुष्प है ।

दो प्राचीन व्याख्या और पू. मुनिप्रवर श्री धुरंधर वि. म. लिखित प्रवेश, सम्पादक मुनिप्रवर के विस्तृत 'विमर्श' पू. मुनिप्रवर श्री प्रशमरति वि. म. के रसास्वाद के साथ **त्रिपुराभारतीस्तवः** प्रकाशित हो रहा है । यह प्रकाशन विद्वज्जनो में स्थान प्राप्त करेगा ऐसा हमे विश्वास है ।

इस ग्रन्थमाला के प्रधान प्रेरक शासन प्रभावक पूज्य आचार्यदेव **श्रीमद् विजयहेमभूषणसूरीश्वरजी महा. सा.** की प्रेरणा से

श्री हसमुखलाल चुनीलाल मोदी चेरीटेबल ट्रस्ट-मुंबई ने ग्रन्थ प्रकाशित करने का लाभ लिया है । आपकी श्रुतभक्ति को भूरिशः अनुमोदना ।

ज्ञाननिधि से प्रकाशित इस ग्रन्थ का उपयोग करने से पहेले गृहस्थवर्ग ज्ञाननिधि में उचित मूल्य अवश्य प्रदान करें यही विनंति ।

प्रवचन प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमः

सम्पादकीय	मुनि वैराग्यरतिविजय	५-६
विमर्श	मुनि वैराग्यरतिविजय	७-३२
तेरा ध्यान न जो करे	मुनि प्रशमरतिविजय	३३-३८
प्रवेश	मुनि धुरंधरविजय	३९-४०
त्रिपुराभारतीस्तवः		
ज्ञानदीपिका	पू. आ. श्री सोमतिलकसू०	१-५५
पञ्जिका	अज्ञात	५६-७३
परिशिष्ट		७४-७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

'**श्रीत्रिपुराभारतीस्तवः**' आचार्य श्रीसोमतिलकसूरिजी कृत ज्ञानदीपिका व्याख्या और अज्ञातकर्तृक पञ्जिकावृत्ति के साथ प्रकाशित हो रहा है । पं० श्री लक्ष्मणदत्त शास्त्री कृत ज्ञानदीपिका व्याख्या का हिन्दी अनुवाद भी इसमें सामिल है । यह कृति पहले '**लघुस्तवराजः**' इस नाम से प्रकाशित हुई है । (प्रका० क्षेमराज कृष्णदास, मुंबई, सं० १९७०) साक्षर श्री जिनविजयजी के सम्पादन में ज्ञानदीपिका, और पञ्जिका व्याख्या के साथ '**त्रिपुराभारती-लघुस्तवः**' के नाम से प्रकाशित हुई है (प्रका० राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर जयपुर) इन दोनो मुद्रित पुस्तको के आधार पर और **आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर, कोबा** से प्राप्त हस्तलिखित प्रत (लि० सं० १६८४, जोधपुर) के आधार पर प्रस्तुत सम्पादन सम्पन्न हुआ है ।

पुराने सम्पादन की मुद्रणादिगत अशुद्धिओं का सम्मार्जन इस सम्पादन में किया है । हस्तलिखित प्रत के आधार पर पाठ संशोधन युवामनीषी **मुनिप्रवर श्री मोक्षरति विजयजी** म. सा. ने किया है । विद्वद्वर्य **मुनिप्रवरश्री धुरंधरविजयजी म० सा०** ने संक्षिप्त प्रवेश लिखकर प्रस्तुत संपादन का गौरव बढ़ाया है । पं० श्री अमृतभाई पटेल का भी प्रस्तुत सम्पादन में प्रदान है ।

श्रीजिनविजयजी द्वारा सम्पादित आवृत्ति के पाठ भेद 'जि०' संज्ञा से उद्धृत किये है ।

अन्त में, यह स्तोत्र तन्त्रमूलक है । इसको पुरानी आवृत्ति अति जीर्णावस्था में थी । उसका नाश न हो यही एक शुभभावना से यह सम्पादन संपन्न हुआ है । ग्रन्थ में वर्णित सामग्री का गैर-उपयोग करने वाला साधक सिर्फ अपने संसार की वृद्धि करेगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतज्ञता दर्शन :

श्री जिनशासन के परम तेजस्वी अधिनायक तपागच्छाधिराज स्मृतिशेष परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् **विजयरामचन्द्रसूरीश्वरजी** म. सा., स्वनामधन्य गच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् **विजयमहोदयसूरीश्वरजी** म. सा., पितृगुरुवर बहुश्रुत मुनिप्रवर **श्री संवेगरति विजय**जी म. सा. की अनहद कृपावृष्टि, श्रुतभक्ति के सर्व कार्यो में हंमेश बरसती रहती है । मेरी श्रुतसाधना उनकी कृपा का ही फल है ।

श्रुत और संयम की साधना में सतत सहयोगी अभिन्नमना गुरुभ्राता मुनिवर **श्री प्रशमरति विजयजी** को भूलना असम्भव ही है ।

मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी,
३०, जैन मरचन्ट सोसायटी
पालडी, अहमदाबाद

वैराग्यरतिविजय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ ॐ ऐं सरस्वत्यै नमः ॥

विमर्श

'श्रीत्रिपुराभारतीस्तवः' की पृष्ठभूमि 'तन्त्रशास्त्र' है । त्रिपुराभारतीस्तोत्र के द्वितीय पद्य के '**वयम्**' पद की व्याख्या पञ्जिकावृत्तिकार ने इस प्रकार की है **वयम्** = **शाक्तेयाऽऽगमविदः** । शाक्त सम्प्रदाय जो कि शक्ति का उपासक है, शैवदर्शन की तत्त्वप्रणालिका का अनुसरण करता है । ज्ञानदीपिका व्याख्या के कर्त्ता आचार्यदेव श्रीसोमतिलकसूरि म. कृत निर्देश अत्यन्त स्पष्ट है । पंद्रहवें पद्य में व्याख्याकार ने शंका के उत्तर में कहा कि-''शिव और शक्ति दोनों भिन्न है । और वही परमार्थमय है ।[१]'' शिव और शक्ति का यह भेद पक्ष शैवदर्शनाभिमत है । इसलिये 'तन्त्र' को समझना आवश्यक और प्रस्तुत होगा ।

'तन्त्र' शब्द अनेक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । सिद्धांत-व्याख्या-मीमांसा-विचार-औषधि-जादु-उपाय-प्रकरण-अधिकार-नियमन-शासन-धर्म-कर्तव्य-समूह-आनंद-व्यवहार प्रचलित अर्थ है । प्रस्तुतार्थ में विवक्षित तन्त्र शब्द 'शास्त्रविशेष' रूप अर्थ का वाचक है । जिसमें तन्त्र का वर्णन हो वह शास्त्रविशेष = तन्त्रशास्त्र । तन्त्रशास्त्र के दो प्रकार है (१) दार्शनिक तन्त्रशास्त्र (२) प्रायोगिक तन्त्रशास्त्र । दोनो प्रकार के शास्त्र के साथ इस लघुस्तव का सम्बन्ध है इसलिए दोनों का विवरण करना उचित होगा ।

---

१. ननु शक्तेरपि शिवात्मकत्वात् तन्नाशे तस्या अपि नाश इति चेन्न, शिवव्यतिरिक्तायाः शक्तेः परमार्थमयत्वात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्व-मन्त्रसमन्वितान् ।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते ॥

पुर्यष्टक पदवाच्य तीस तत्त्व एवं मन्त्रपदप्राप्त जीव पदार्थो के साथ अनेक पदार्थ का विस्तार करने वाला शास्त्र (और) जिसमें त्राण करने की शक्ति है 'तन्त्र' कहलाता है । तन्त्र का यह निरुक्तिलभ्य अर्थ है । दार्शनिक क्षेत्र में तन्त्रशास्त्र पाशुपत मत एवं शैवमत के नाम से प्रसिद्ध है । पाशुपत मत प्राचीन है, उसके प्रवर्तक नकुलीश है । दोनों मत में समानता है । भेद अल्प ही है ।

शैवदर्शन :

शैवदर्शन में तीन मुख्य तत्त्व है । (१) पति (२) पशु (३) पाश, 'पति' का अर्थ है परमेश्वर शिवतत्त्व । पशु से अर्थ है जीवात्मा और पाश का मतलब है बंधन । पाश से बद्ध जीव की मुक्ति हेतु पाश के मूल का ज्ञान, पाशमुक्ति के साधनों का ज्ञान एवं तत्त्वज्ञान आवश्यक है इसलिए ये तीन ज्ञान गौण पदार्थ के रूप में स्वीकृत है ।[१]

पति :

पति का अर्थ है—ईश्वर (**पतिरीश्वरः** स० द०) शैवदर्शन में पति के रूप में 'शिवतत्त्व' को माना जाता है । 'शिव' शब्द के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ मंगल-कल्याण-मोक्ष इत्यादि है । लेकिन प्रस्तुत में प्रवृत्तिनिमित्तलभ्य पारिभाषिक अर्थ अभिप्रेत है । शिव का मतलब है शिवत्व धर्म के साथ जिसका सम्बन्ध हो । शिवत्वधर्म का मतलब पाशमुक्तता । पति = परमेश्वर है अनादि पाशमुक्त है । इसलिये शिवत्वयुक्त = शिव है । ईश्वर के अनुग्रह

---

१. **पतिविद्ये तथाविद्या पशुः पाशश्च कारणम् ।**
तन्निवृत्ताविति प्रोक्ताः पदार्थाः षट् समासतः ॥

यद्यपि मुख्यानि तत्त्वानि पति-पशु-पाशरूपाणि त्रिण्येव तथापि पाशमूलस्य पाशनिवृत्तिसाधनस्य च ज्ञानं तत्त्वज्ञानं चेत्येतत्त्रयमप्यावश्यकमिति षडतत्त्वान्यत्रोक्तानीति बोध्यम् । (सर्वदर्शनसङ्ग्रह)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से जिस जीवात्मा को 'मन्त्र' पद प्राप्त है वे भी **'शिव'** स्वरूप है । मन्त्र जीव, कर्म और शरीर से मुक्त होते है । उनकी सङ्ख्या सात कोटि है । और इतर जीव पर अनुग्रह करते है ।[१]

पाशमुक्त होने के कारण मुक्तात्मा भी शिवत्व योगी होते है । शिवतत्त्व के वाचक शब्द एवं शिवत्व की प्राप्ति के उपायभूत साधन भी उपचार से शिवत्व योगी होने से 'शिव' है ।[२]

शैव दर्शन में पति पदार्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है । पुरोगामी नाकुलीशपाशुपतदर्शन से शैव दर्शन में 'पति' को अधिक महत्त्व प्राप्त है । नाकुलीश दर्शन अनुसार मुक्तात्मा स्वतन्त्र है । शैव दर्शन में मुक्तात्मा स्वतन्त्र नही अपितु शिव परतन्त्र है ।[३]

मुक्तात्माओं की तरह विद्येश्वरादि पदस्थित आत्माओं को ईशानुग्रह से शिवत्त्व प्राप्त है (जिनकी संख्या आठ है) वे भी परमेश्वर को परतन्त्र ही है ।

परमेश्वर जगत्कर्ता है और सृजन-पालन-संहार-तिरोभाव और अनुग्रह करण यह पांच उसके कृत्य है ।[४]

सर्जनादि कृत्य ईश्वर जीवात्मा के कर्म को आधीन रहकर निवर्तन करता है यह शैवदर्शन का मत है । नकुलीश पाशुपत के मतानुसार ईश्वर स्वाधीन रहकर ही सर्जनादि कृत्य करता है ।

---

१. मन्त्राश्च कर्मणा शरीरेण च मुक्ताः केवलेन मलेन युक्ताः जीवविशेषा एव । ते य सप्तकोटिसङ्ख्याका इतरजीवानुग्राहकाश्च भवन्ति ।

२. एवं च शिवशब्देन शिवत्वयोगिनां मन्त्र-मन्त्रेश्वरमहेश्वरमुक्तात्मशिवानां सवाचकानां शिवत्वप्राप्तिसाधनेन दीक्षादिनोपायकलापेन सह पतिपदार्थे सङ्ग्रहः कृतः ।

३. मुक्तात्मनां विद्येश्वरादीनां च यद्यपि शिवत्वमस्ति तथापि परमेश्वरपारतन्त्र्यात् स्वातन्त्र्यं नास्ति ।

टी. ४ पञ्चविधं तत्कृत्यं सृष्टि-स्थिति-संहार-तिरोभावः ।
तद्वदनुग्रहकरणं प्रोक्तं सततोदितस्यास्य ॥ भोजः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शैव दर्शन में 'अनुग्रहकरण' कृत्य की अवधारणा विशिष्ट है । जीवात्मा पाशमुक्त बन के शिवस्वरूप ईश्वरानुग्रह से ही हो सकता है । मुक्तात्मा-अनंतादि आठ विद्येश्वर के शिवत्व में भी ईशानुग्रह कारण है ।[१]

ईश्वर जीवात्मा को मन्त्र और मन्त्रेश्वर पदवी प्रदान करता है । (मन्त्रेश्वर = मन्त्र पदवी की पात्रता प्राप्त करने वाले जीवविशेष ।[२])

मलादि पाशों का परिपाक हो जाने पर जीवात्माकी क्रिया शक्ति का आच्छादन करने वाली रोधशक्ति का विनाश होता है । जिस जीवात्मा की आच्छादन शक्ति को रोध हो गया है वह मोक्षाधिकारी है । मोक्षाधिकारी जीव को परमेश्वर स्वयं गुरु मूर्ति में अधिष्ठान करके दीक्षा और मोक्ष का दान करता है ।[३]

इस प्रकार शैवदर्शन की ईश्वर सम्बन्धी संकल्पना इतर दर्शन से नितांत भिन्न प्रतीत होती है । इस संकल्पना का दार्शनिक जगत पर गहरा प्रभाव है ।

पशु :

शैवमत में द्वितीय पदार्थ 'पशु' है । पाश से बद्ध जीवात्मा की 'पशु' संज्ञा है । जीवात्मा को 'पशु' शब्द से संबोधित करने का रहस्य यह है कि पशु और जीव के गुणधर्म समान है । श्वान वि० पशु जिस तरह अपने मालिक मनुष्य की इच्छा के आधीन होते है, उसी तरह जीवात्मा परमेश्वर के आधीन है । इसलिए वे पशु है । महेश्वर उनका पति है, मालिक है । मनुष्य की अपेक्षा गाय वि० पशुगण अल्पज्ञानी है इसलिये पशु है, वैसे ही

---

१. मुक्तात्मानोऽपि शिवः किन्त्वेते यत्प्रसादतो मुक्ताः स० टी० ।

२. शतमष्टादश तेषां कुरुते स्वयमेव मन्त्रेशान् । टी० मण्डल्यादयोऽष्टादशाधिक शतसङ्ख्या मन्त्रेश्वरा जीवविशेषाः ।

३. तत्परिपाकाधिक्यानुरोधेन शक्त्युपसंहारेण दीक्षाकरणेन मोक्षप्रदो भवत्याचार्य मूर्तिमास्थाय परमेश्वरः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमेश्वर की अपेक्षा से जीवात्मा अल्पज्ञ होने से पशु है ।[१]

जीवात्मा व्यापक है, नित्य है, अनेक (= प्रतिशरीर भिन्न) है, कर्ता है ।

जीवात्मा = पशु के तीन भेद है ।

सकल, प्रलयाकल और विज्ञानाकल ।

अन्य रीति से देखा जाये तो जीवात्मा के दो भेद है—सकल और निष्कल । सकल = कलासे सहित जीवात्मा । निष्कल = कला सम्बन्ध से रहित जीवात्मा । निष्कल पशु के दो प्रकार है । सृष्टि के प्रलय के कारण अकल और विज्ञान के कारण से अकल ।

सकल :

'माया' समग्र. सृष्टि का मूलभूत तत्त्व है । प्रलयकाल में भी माया का नाश नहीं होता । उस समय में उसकी बीजावस्था होती है । सृष्टि के आरंभकाल में परमेश्वर के सन्निधान से माया का कला के रूप में परिणाम होता है । 'कला' माया का सर्वप्रथम परिणाम है । कला स्वयं अचेतन है फिर भी चेतन को परतन्त्र रहती है ।[२] वह सूक्ष्मतर है और सत्त्वादि गुणत्रय से रहित है । प्रलयकाल में कला का विनाश होता है ।

कला से 'काल' की उत्पत्ति होती है, काल एक ही है ।

काल से पुण्यापुण्य कर्म रूपा 'नियति' जन्म लेती है । नियति से 'विद्या' का प्रादुर्भाव होता है । विद्या का अर्थ है जीवात्मा का चित्तनामक गुण, विद्या प्रतिजीव भिन्न है । विद्या से 'राग' की उत्पत्ति मानी गइ है,

---

१. **ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः ।**
पशवः परिकीर्त्यन्ते समस्ताः पशुवर्तिनः ॥
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः ।
तेषां पतिर्महादेवः श्रुतः पशुपतिः श्रुतौ ॥

२. चेतनपरतन्त्रत्वे सति अचेतना कला ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग भी प्रतिप्राणि भिन्न है । 'राग' से 'प्रकृति' पैदा होती है और प्रकृति से तीन 'गुण' (सत्त्व-रजस्-तमस्) जन्म लेते है ।

कला-काल-नियति-विद्या-राग-प्रकृति और गुण इन सातत्त्वों को 'कलादि सप्तक' कहा जाता है ।

सत्त्वादि तीन गुण से मन-बुद्धि-अहंकाररूप अन्तःकरण उत्पन्न होता है । तीन गुण से ही शब्दादि पंच विषय उसके आश्रयभूत पंचमहाभूत, पंचतन्मात्र, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति होती है ।

कलादि सात + अन्तःकरण त्रय + पंच विषय + पंचतन्मात्र + पंच ज्ञानेन्द्रिय + पंच कर्मेन्द्रिय = इन तीस तत्त्वो की पुर्यष्टक संज्ञा है । इन तीस तत्त्वो की सहाय से सूक्ष्म देह का निर्माण होता है । सूक्ष्मदेह से स्थूलदेह जन्म लेता है ।[१]

कलादि तीस तत्त्वो से युक्त जीवात्मा की 'सकल' संज्ञा है । शैवाभिमत सृष्टिउत्पत्ति की प्रक्रिया सांख्यदर्शन से मिलती जुलती है ।

प्रलयाकल :

'कला' की उत्पत्ति सृष्टि के आरंभ काल में होती है । प्रलयकाल में स्थूल पृथ्व्यादि से लेकर कला तकके पदार्थो का उपसंहार होता है । कला के उपसंहार से प्रलयकाल में जीवात्मा को अकल अवस्था प्राप्त होती है । उसको प्रलयाकल कहते है । साधारण जीवात्मा का संसार में आवर्तन प्रलयकाल पूर्ण होने के बाद पुनः प्रारंभ होता है । जिस जीवात्मा के कर्म पाश और मल पाश परिपक्व हो जाते है वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।[२]

---

१. **स्यात् पुर्यष्टकमन्तःकरणं धीकर्म करणानि** । पुर्यष्टकं नाम प्रतिपुरुषं नियतः सर्गादारभ्य कल्पान्तं मोक्षान्तं वा स्थितः पृथिव्यादिकलापर्यन्तस्त्रिंशत्तत्त्वात्मकः सूक्ष्मो देहः ।

२. प्रलयाकलोऽपि द्विविधः-पक्वपाशद्वयस्तद्विलक्षणश्च । तत्र प्रथमो मोक्षं प्राप्नोति, द्वितीयस्तु पुर्यष्टकवशान्नानाविधजन्मभाग् भवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विज्ञानाकल :

परमेश्वर के स्वरूप का विज्ञान, होने से जिस अकल अवस्था की प्राप्ति होती है उसे विज्ञानाकल कहते है । उस अवस्था में जीवात्मा तीन पाश से मुक्त हो जाता है, केवल 'मल' नामक पाश से बद्ध होता है । जब मलगत रोधशक्ति का नाश हो जाता है तब मलका परिपाक होता है । जैसे जैसे मलका परिपाक होता है, जीवात्मा के स्वरूप को आवरण करनेवाली शक्ति का नाश होता है । जिस जीवात्मा का मल परिपक्व हो चूका है उन पर परमेश्वर का अनुग्रह होता है । ईश्वर उन्हें विद्येश्वर पद का दान करता है । जिनका मल परिपक्व नही हुआ उन्हें 'मन्त्र' पद प्रदान करता है । कर्म और शरीर से मुक्त, लेकिन मल से युक्त जीवात्मा को 'मन्त्र' ऐसी विशेष संज्ञा प्राप्त है । प्राकृत जीवात्मा से इनकी शक्ति अधिक होती है । वे सात कोटि संख्या में है और इतर जीव पर अनुग्रह करने की शक्ति से सम्पन्न है ।[१]

इस तरह पशु तत्त्व के पाँच भेद है ।

१. सकल = संसारवर्ति जीवात्मा ।

२. अपक्वकलुष प्रलयाकल = भविष्य में संसारगामि जीवात्मा ।

३. पक्वकलुष प्रलयाकल = भविष्य में मोक्षगामि जीवात्मा ।

४. असमाप्तकलुष विज्ञानाकल = मन्त्रपद प्राप्त जीवात्मा ।

५. समाप्तकलुष विज्ञानाकल = मुक्त जीवात्मा ।

पाश :

'पशु' तत्त्व का पारमार्थिक बोध होना, 'पाश' तत्त्व के बोध विना

---

१. तत्र प्रथमो द्विप्रकारो भवति समाप्तकलुषासमाप्तकलुषभेदात् । तत्राद्यान् कालुष्यपरिपाकवतः पुरुषधौरेयान् अधिकारयोग्यान् अनुगृह्य अनन्तादि-विद्येश्वराष्टपदं प्रापयति । अन्त्यान् सप्तकोटिसङ्ख्यातान्मन्त्रान् अनुग्रहकरणान् विधत्ते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंभव है । पाश तत्त्व, पशुत्व से संबद्ध है । 'बंधन' पाशपद का सामान्य अर्थ है । शिवस्वरूप जीवात्मा की पशुता के कारणभूत पाश चार प्रकार के है ।

मलपाश, कर्मपाश, मायापाश, रोधशक्ति पाश (अन्यत्र पाँच पाश का भी वर्णन मिलता है ।[१] 'बिंदु' इस पाश का नाम है । माया स्वरूप है । चारों पाश की विमुक्ति के पश्चात् 'बिंदु' नामक पाश से बद्ध होने पर भी जीव मुक्त हो जाता है, केवल यह मुक्ति गौण है । यह पाश विद्येश्वर पद प्रदाता है । विद्येश्वर पद्य अपर मुक्ति है । पर मोक्ष शिवतत्त्व प्राप्ति है । वस्तुतः इस पाश में बंधनशक्ति भाव नही है । इसलिये उसको पाश में नहीं गिना जाता) ।

मलपाश :

जीवात्मा स्थित अनादि दुष्टभाव को 'मल' कहा जाता है । मल के पाँच प्रकार है ।

१. **मिथ्याज्ञान**

२. **अधर्म** दोनों के अर्थ स्पष्ट है ।

३. **सक्तिहेतुः** विषयसंनिधानादि विषयासक्तिजनककारणकलाप

४. **च्युतिः** सदाचार से भ्रष्ट होना

५. **पशुत्वमूलः** पशुता प्रापक अनादि संस्कार ।[२]

'मल' जीवात्मा की स्वाभाविक ज्ञान शक्ति को और क्रियाशक्ति को आवृत्त करके निष्क्रिय कर देता है । जिस तरह 'तुष' चावल के मूल स्वरूप का आच्छादन करता है । 'कालिमा' तांबे की चमक को ढंक देती है उसी

---

१. **अर्थपञ्चकं पाशाः ।**

२. आत्माश्रितो दुष्टभावो मलः । स च मिथ्याज्ञानादि भेदात् पञ्चविधः । **मिथ्याज्ञानमधर्मश्च सक्तिहेतुश्च्युतिस्तथा । पशुत्वमूलं पञ्चैते तन्त्रे हेया विविक्तितः ।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह मल ज्ञान-क्रिया शक्ति का आवरण करता है ।[१]

शक्ति :

विश्व के हरेक पदार्थ में ज्ञान या क्रिया स्वरूप सामर्थ्य है । अग्नि में दाह करने का सामर्थ्य है । जल में शीतलता का सामर्थ्य है । अंधकार में स्वरूपाच्छादन का सामर्थ्य है । वस्तुगत सामर्थ्य 'शक्ति' है । हरेक शक्ति अपने आश्रयभूत द्रव्य का आधार लेकर प्रवृत्त होती है और अन्य पदार्थ पर अपनी असर छोड़ती है । यह असर अच्छी (Positive) भी हो सकती है और बूरी भी (Negative) । अच्छी या बूरी असर शक्ति के सदुपयोग या दुरूपयोग पर अवलंबित है । पाशगत रोधशक्ति पाश का आधार लेकर न केवल आत्मस्वरूप को आच्छादित करती है अपितु उसे अकार्य में प्रवृत्त भी करती है ।

हरेक आत्मा ज्ञानशक्ति और क्रिया शक्ति से सम्पन्न है । 'मल' आत्मा की शक्ति का अवरोधक है । ज्ञानशक्ति को दृक्शक्ति के नाम से पहेचाना जाता है । दृक्शक्ति एक ही है फिर भी विषय के भेद से उसके पाँच औपचारिक भेद है ।[२]

(१) दर्शनशक्ति : इन्द्रिय जन्य ज्ञान ।

(२) श्रवणशक्ति : श्रोत्रेन्द्रियजन्य बोध, श्रवण यद्यपि इन्द्रियजन्य ही है फिर भी तत्त्वज्ञान का अभ्यर्हिततम कारण है, इस कारण से पृथक् गिना जाता है ।

(३) मननशक्ति : मनोजन्य ज्ञान ।

(४) विज्ञानशक्ति : शास्त्रो का अविपरीत, निःसंदिग्ध, सूत्र और अर्थ जन्य बोध ।

---

१. **एको ह्यनेकशक्तिर्दृक्क्रियाच्छादको मलः पुंसाम् ।**
तुषतण्डुलवज्ज्ञेयः ताम्राश्रितकालिमावद्वा ॥

२. तत्र दृक्शक्तिरेकापि विषयभेदात् पञ्चधोपचर्यते दर्शनं श्रवणं मननं विज्ञानं सर्वज्ञत्वञ्चेति । एषा धीशक्तिः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) सर्वज्ञताशक्ति : सर्व वैश्विक पदार्थों का संक्षेप और विस्तार से कार्यकारणादि तत्त्व के रूप में ज्ञान ।

क्रियाशक्ति :

क्रियाशक्ति के तीन औपचारिक भेद है ।

मनोजवित्व शक्ति = क्रिया में गति की शक्ति (Speed) । **(निरतिशयशीघ्रकारित्वम्)**

कामरूपित्व शक्ति = शरीरेन्द्रियादि का रूपांतरण करने की शक्ति ।

विकरणधर्मित्व शक्ति = शरीरादि का उपसंहार होने के बाद भी ऐश्वर्य धारण करने की शक्ति ।

(दार्शनिक जगत में शक्ति की अवधारणा प्रचलित है । न्याय मन शक्ति को अतिरिक्त पदार्थ के रूप में स्वीकार नहीं करता, मीमांसा के अनुसार शक्ति स्वतन्त्र पदार्थ है ।)

कर्मपाश :

'जीवात्मा फल के उद्देश्य से प्रवृत्ति करता है ।' उस प्रवृत्ति को कर्म कहते है । वह अनादि है । धर्म और अधर्म उसके दो भेद है । जीवात्माओं द्वारा अनुभूत फल वैचित्र्य कर्मनामक पाश के कारण से है ।[१]

मायापाश :

माति याति चास्मिन् सर्वम् इति माया ।

प्रलयकाल में प्रत्येक पदार्थ का समावेश माया में होता है और सृष्टि काल में प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति माया से होती है । जगत की मूलभूत प्रकृति का नाम 'माया' है । माया से ही कलादि तीस तत्त्वो का जन्म होता है ।[२]

---

१. क्रियते फलार्थिभिरिति कर्म धर्माधर्मात्मकं बीजाङ्कुरवत् प्रवाहरूपेण अनादि ।

२. माति अस्यां शक्त्यात्मना प्रलये सर्वं, जगत्सृष्टौ व्यक्तिम् आयाति इति माया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अद्वैत वेदांत में माया को ब्रह्म का विकार माना गया है । शैवदर्शन द्वैतवादी है । माया शिव से अतिरिक्त है और सांख्य के प्रकृतितत्त्व की तरह जगदुत्पत्ति का मूल है ।)

रोधशक्तिपाश :

मल-कर्म और माया में जो आवरण शक्ति है उसे 'रोधशक्ति' कहते है । आत्मा की दक्रिया शक्ति और पाश की रोधशक्ति परस्पर विरूद्ध है । यह एक नकारात्मक शक्ति है और पाश का अधिष्ठान करके कार्य करती है । स्वतन्त्र न होने के कारण रोधशक्ति को औपचारिक पाश कहते है ।[१]

मल-कर्म-माया और रोधशक्ति इस चार पाश से 'पशु' बद्ध है । पाश के कारण जीवात्मा की दक्शक्ति और क्रियाशक्ति आच्छादित-कुंठित-आवृत्त है । मल का परिपाक होने से पाशगत रोधशक्ति का ह्रास होता है । रोधशक्ति को ह्रास होने पर विद्यमान पाश भी अविद्यमान तुल्य बन जाते है । ऐसे जीवात्मा पर परमेश्वर = पति = शिव का अनुग्रह होता है और उसे मन्त्रेश्वर पद मिलता है । मलादि पाशों का पूर्ण परिपाक हो जाने पर रोधशक्ति का पूर्ण नाश होता है । ऐसा जीव मोक्षाधिकारी है । परमेश्वर गुरुमूर्ति का अधिष्ठान करके जीवात्मा को दीक्षा प्रदान करता है और मुक्ति देता है ।

यह शैव मत का संक्षिप्त दार्शिनक स्वरूप है ।

पाशगत रोधशक्ति के नाशक उपायो का वर्णन नाकुलीश पाशुपत और शैवदर्शन में एक ही है ।

नाकुलीशपाशुपत मत में पाशमुक्ति के उपायभूत पाँच पदार्थ का ज्ञान आवश्यक माना जाता है । कार्य-कारण-योग-विधि-दु:खान्त । इन पाँच पदार्थो में से यहाँ तृतीय और चतुर्थ योग और विधि उपाय प्रस्तुत है ।

---

१. बलं रोधशक्ति: । अस्या: शिवशक्ते: पाशाधिष्ठानेन पुरुषतिरोधायकत्वाद् उपचारेण पाशत्वम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग :

योग, चित्त की सहायता लेकर जीवात्मा का ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड देता है । योग के दो प्रकार है । क्रियायोग और क्रियोपरम योग ।

जप-ध्यानादि क्रियायोग है और निष्क्रिय अवस्था की साधना क्रियोपरम योग है । परमेश्वर में अनन्य भक्ति, तत्त्वज्ञान, शरणागति आदि क्रियोपरम योग है ।[१]

विधि :

'विधि' के आचरण द्वारा जीवात्मा परमेश्वर की समीप पहुंचता है । विधि के दो भेद है । मुख्य विधि और गौण विधि मुख्य विधि को चर्या कहते है । चर्या के भी दो प्रकार है । व्रत चर्या और द्वारभूत चर्या ।

व्रतचर्या : दिन में तीन बार भस्म से स्नान करना, भस्म में शयन करना, उपहार (नियम) का पालन, जप, प्रदक्षिणा वि० चर्या में है । जोर जोर से हंसना, गाना, नृत्य करना, हुहुहु शब्द का नाद, नमस्कार और जाप यह छः क्रिया उपहार के अन्तर्गत है । उपहार स्वरूप यह पाशमुक्ति उपाय शिष्ट जनाचरण से विरुद्ध प्रतीत होता है । पाशमुक्ति और उपहार के बीच क्या कार्य कारण भाव है यह प्रश्न का उत्तर कठिन है । चर्यागत उपहार के लिये सूचना दी गइ है कि उपहार का पालन एकांत में ही करना चाहिए अन्यथा लोक निन्दा आदि से साधक का चित्त विक्षिप्त हो सकता है । इसीलिये यह साधना विधि गूढ रखी जाती है । वस्तुतः लोक विपरीत साधना मार्ग, एकांत और गुप्तता यही तन्त्र के वाममार्ग के बीज बन गये ऐसा अनुमान करने में कोई बाधा नहीं ।

चर्या का यथाविधि सम्पादन करने के लिये द्वारभूत छः कर्मो का उपदेश है ।

---

१. चित्तद्वारेण आत्मेश्वरसम्बन्धहेतुः योगः । स च द्विविधः क्रियालक्षणः क्रियोपरमलक्षणः च । तत्र जपध्यानाधिरूपः क्रियायोगः । क्रियोपरम-लक्षणः तु निष्ठासंविद्-गत्यादिलक्षणः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्राथन = मृतवत् सोना, **स्पंदन** = भूताविष्ट प्राणी की तरह शरीर को जोरों से हीलाना, **भेदन** = पंगु की तरह चलना, **शृंगार** = कामी स्त्री पुरुष की तरह विलास, **अवितत्ककरण** = विवेकहीन व्यक्ति की तरह लोकनिंद्य कार्य, अवितथभाषण = यद्वातद्वा भाषण ।

मुख्य विधि का उपकारी अनुस्नान, आचमन-शुचिता-नैमित्तिक भस्मस्नान-निर्माल्यधारण इत्यादि **गौण विधि** है ।

तन्त्रशास्त्रोक्त साधनामार्ग का यह दिङ्मात्र दर्शन है ।

इस विमर्श में अब तक जिस अर्थ में 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग हुआ है । वह दार्शनिक किंवा सैद्धांतिक है । तन्त्र शब्द शास्त्रीय संदर्भ में जिस अन्य अर्थ में प्रयुक्त होता है वह है मन्त्र-यन्त्र इत्यादि का प्रयोग । स्पष्टता से दोनो का भेद समज ने के लिये संज्ञा भेद करना आवश्यक है । दार्शनिक संदर्भ में 'तन्त्रदर्शन' शब्द का व्यवहार और मन्त्रादि के संदर्भ में 'तन्त्रप्रयोग' शब्द का व्यवहार करने से सादृश्य की भ्रान्ति नहीं होगी ।

तन्त्र प्रयोग :

सामान्य मानव अपने मन में अनेकविध आकांक्षा लेकर जीवन व्यतीत करता है । आकांक्षा की पूर्ति के लिये द्रव्योपार्जनादि प्रवृत्ति करता है । जब भौतिक संसाधनों से उसकी मानसिक आकांक्षा पूर्ण नहीं होती या फिर उसे ऐसी संभावना नहीं दिखती तब उसके पैर सहसा अभौतिक संसाधनों की और मूडते है । मनुष्य से अधिक अभौतिक शक्ति से सम्पन्न जीवात्मा जिसे लिये 'देव' शब्द का प्रयोग होता है—'उनकी सहाय पाकर ऐहिक आकांक्षा की पूर्ति करना' इसी सिद्धांत के आधार पर तन्त्र-प्रयोग का प्रवर्तन हुआ है । तन्त्र प्रयोग में आत्मिक उत्कर्ष या विशुद्धि का कोइ संदर्भ नहीं है । तन्त्र दर्शन और तन्त्र प्रयोग में जो वैषम्य है उसको समज लेना आवश्यक है ।

तन्त्रदर्शन	आध्यात्मिक है
तन्त्रप्रयोग	भौतिक और दैविक है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तन्त्रदर्शन	आत्मविशुद्धि का पक्षपाती है
तन्त्रप्रयोग	ऐहिक आकांक्षा का पक्षपाती है ।

तन्त्रदर्शन में उद्देश्य शिवतत्त्व निर्दोष और निर्विकारी है । तन्त्र प्रयोग में उद्देश्य सदोष और विकारी है । तन्त्र दर्शन में उपाय मुक्ति के विधि चर्यादि है । तन्त्रप्रयोग में सिद्धि के उपाय होम-बलिआदि जो हिंसा से व्याप्त है । तन्त्रदर्शन की साधना पाशमुक्ति के लिये है । तन्त्रप्रयोग की साधना दु:ख मुक्ति के लिये है ।

ऐहिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये तन्त्रप्रयोग का प्रचलन हुआ है । तन्त्रप्रयोग में अ-भौतिक दैवी तत्त्वो की शक्ति का सहारा लिया जाता है । देव की शक्ति का उपयोग करने के लिये देव को प्रसन्न करना जरूरी है, उनका सम्पर्क करना जरूरी है, उनका ध्यान आकृष्ट करना जरूरी है । तन्त्रप्रयोग दैवी शक्ति के जागरण का मार्ग है । मन्त्र और यन्त्र के माध्यम से देव का सम्पर्क किया जाता है, देव के साथ अनुसन्धान रखने वाले शक्ति सम्पन्न शब्द 'मन्त्र' से अभिप्रेत है । देव के साथ सम्बन्ध रखनेवाली आकृतिविशेष 'यन्त्र' है । प्रसन्न देव ही ईप्सित कार्यो का सम्पादन करने में सहायक बनते है इसलिये देवविशेष को प्रसन्न करने वाली पूजाविधि का प्रयोग होता है । पूजाविधि में द्रव्यार्पण एवं होम आदि होते है । निश्चल मन:पूर्वक मन्त्र जाप करने से देव वश में आते है ।

देव की दो कोटियाँ है । उच्च और निम्न । शांति-पुष्टि आदि उच्च कार्यो में सहाय करनेवाले देव उच्च कोटि के है । इन देवो की पूजाविधि भी निर्दोष होती है । मारणादि हीन कार्यो में सहाय करने वाले देव हीन कोटि के है । हीन द्रव्य, हीन आचार, हीन पूजाविधि से ये प्रसन्न होते है और क्रूर कर्मी होते है ।

कार्य या फल की अपेक्षा से तन्त्र प्रयोग में साधक के दो वर्ग हो गये (१) दक्षिण मार्गी (२) वाममार्गी । उच्च देव की आराधना और सौम्य साधनामार्ग अपनाने वाले तान्त्रिक दक्षिण मार्गी होते है, इनसे ठीक विपरीत वाममार्गी होते है । वाम मार्ग में पंचमकार का सेवन किया जाता है । मद्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांस-मत्स्य-मुद्रा-मैथुन यह पंचमकार है । दक्षिण मार्ग में पंचमकार का सात्त्विक अर्थ किया जाता है ।[१] हाँलाकि पंचमकार का सेवन अनिवार्य नहीं माना जाता ।

देवो को प्रसन्न करके उनके द्वारा इप्सित कार्यसिद्धि की जाती है । जिसे कर्म कहते है । कर्म के दो भेद है । सौम्य कर्म और क्रूर कर्म ।

शान्ति (रोगादिक का शमन) पुष्टि (बलवर्धक प्रयोग) तुष्टि (प्रसन्नता आपादन) वशीकरण (आकर्षण) इत्यादि सौम्य कर्म है । मरण (वध) स्तंभन (गतिनिरोध) उच्चाटन (मानहानि) विद्वेषण (द्वेषजनन) मोहन (किंकर्तव्यमूढता जनन) इत्यादि क्रूर कर्म है ।

'तन्त्र' इतिहास :

तान्त्रिको की दृष्टि से तन्त्र प्रयोग के प्रणेता भगवान् 'शिव' है । प्रारंभकाल में सिर्फ एक शैवतन्त्र ही प्रचलित था । शाक्त तन्त्र एवं वैष्णव तन्त्र का प्रयोग बाद में होने लगा । धीरे धीरे शक्ति की उपासना अधिक होने लगी । इस कारण से शैवतन्त्र और वैष्णवतन्त्र का प्रचलन मंद हो गया । वर्तमान में केवल शाक्त सम्प्रदाय ही प्रचलित है । गौड़, बंग और काश्मीर शाक्तों की तन्त्रभूमि है ।

---

१. मायामलादिशयंनान् मोक्षमार्गनिरुपणम् ।
अष्टदुःखादिविरहान् मत्स्येति परिकीर्तितम् ॥

माङ्गल्यजननाद् देवि ! संविदानन्ददानतः ।
सर्वदेवप्रियत्वाच्च मांस इत्यिभिधीयते ॥

सुमनः सेवितत्वाच्च राजवत् सर्वदा प्रिये ।
आनन्दजननाद् देवि सुरेति परिकीर्तिता ॥

मुदं कुर्वति देवाना मनांसि द्रावयन्ति च ।
तस्मान्मुद्रा इति ख्याता दर्शिता व्याकुलेश्वरि ॥

पञ्चमं देवि सर्वेषु मम प्राणप्रियं भवेत् ।
पञ्चमेन विना देवि चण्डिमन्त्रं कथं जपेत् ।
आनन्दं परमं ब्रह्म मकारास्तस्य सूचकाः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शैव और शाक्त तन्त्र में दक्षिणमार्ग और वाममार्ग दोनों को स्थान प्राप्त है । वैष्णवतन्त्र केवल दक्षिणमार्गी है ।

तन्त्रो के प्रयोग का निरुपण करने वाले शास्त्रों को प्रतिपाद्य विषय भेद से तीन श्रेणि में बाँटा गया है । आगम, यामल और तन्त्र । इन शास्त्रो में कहा गया है कि-'कलियुग में वैदिक मन्त्र और साधन प्रभावहीन होगे आगमविधान से ही देवता प्रसन्न होंगे ।'[१]

आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि-'तन्त्र में निर्दिष्ट मन्त्रो की लिपि बांग्लालिपि से मिलती है इसलिये इन तन्त्रों को प्राचीन नहीं मान सकते ।'

आर्यावर्त की ब्राह्मणपरम्परा के तन्त्रप्रयोगशास्त्र का यह अतिसंक्षिप्त दिशा दर्शन है । बौद्ध तन्त्र पर इसका अधिकांश प्रभाव रहा है । जैन धर्म की दृष्टि में 'तन्त्रप्रयोग' तन्त्रप्रयोग जैन की धर्म के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन रसप्रद होगा ।

जैनतन्त्र :

जैनधर्म के दो मूलभूत तत्त्व है । कर्म का सिद्धांत और अहिंसा । संसारी जीव की हरेक प्रतिक्रिया और उसका फल कर्म से प्रभावित रहता है । आकांक्षा और उसकी पूर्ति, साधनो की प्राप्ति और संतोष कर्मानुसार ही मिलता है । कर्म के सिद्धांत के कारण ऐहिक आकांक्षा की पूर्ति के हेतु से प्रयोजित तन्त्रप्रयोग का महत्त्व जैन धर्म में बहुत ही गौण है ।

देवताओं को संतुष्ट करने के लिये तन्त्र में जिस विधि का निर्देश किया है वह हिंसा से व्याप्त है । फलतः उद्देश्य और साधना दोनों दृष्टिकोण से तन्त्रप्रयोग जैन धर्म के मूलभूत सिद्धांत से प्रतिकूल है । श्री सूत्रकृतांग सूत्र में (२.३.१८) ऐसे तन्त्रप्रयोग को पापश्रुत कहा गया एवं, उसके प्रयोक्ता मुनि की गर्हा की गइ है । वह अनार्य है विप्रतिपन्न है और मरकर किल्बि-

---

१. आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः ।
न हि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्यविधानतः ॥ (विष्णुयामल)
कलौ आगमकेवलम् । (कुलार्णवतन्त्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षिक योनि में जानेवाला है । उत्तराध्ययन सूत्र में ऐसे मुनि को 'पापभिक्षु' कहा गया । श्री दशवैकालिक में तन्त्रप्रयोग ज्योतिष-भैषजादि शास्त्रो को 'भूताधिकरण पद' कहा गया है । क्योंकि यह मार्ग ऐहिक लक्ष्य और हिंसा से व्याप्त है ।

लक्ष्यशुद्धि, साधनशुद्धि और साधनाशुद्धि को जैन शास्त्रों में बहुत ही महत्त्व दिया है । मोक्षमार्ग से प्रतिकूल लक्ष्य, अहिंसा के असाधक साधन, और संयम की विरोधी साधना जहाँ हो वह मार्ग ऊर्ध्वगामी नही है । अधोगामी है ।

जैन धर्म में जो तन्त्रप्रयोग प्रचलित है उसमें इन शुद्धि का ख्याल सर्वप्रथम रखा गया है । इसलिये जैनधर्म का तन्त्रमार्ग सबसे सात्त्विक, नैष्ठिक और सफल है । निर्दोष लक्ष्य, निष्पाप साधना, शुद्ध आशय एवं श्रेष्ठ चारित्र की धरोहर पर ही जैन श्रमणों ने शक्ति की उपासना की है ।

वस्तुतः सभी प्रकार के तन्त्रप्रयोग का मूल उत्पत्ति स्थान विद्यानुप्रवाद पूर्व है । जो द्वादशांगी के अन्तर्गत है । श्रीतीर्थंकर भगवंतो के मुखकमल से प्रसृता वाणी मन्त्रबीजात्मिका है । शाश्वत नमस्कार महामन्त्र एक स्वयं सिद्ध महामन्त्र है । आगमो में ४८ लब्धि और हजारों विद्याओं का उल्लेख है । आत्मा के वीर्य और क्षयोपशम से स्वयंभू प्रगट होने वाली शक्ति 'लब्धि' है । प्रयत्नसाध्य सिद्धि को विद्या कहते है । मन्त्र और विद्या के बीच की यह भेदरेखा जैन तन्त्र में ही प्रचलित है । जिसका अधिष्ठाता पुरुषदेव ही वह मन्त्र कहा जाता है । स्त्रीदेव अधिष्ठात्री हो उसकी 'विद्या' संज्ञा है ।

तन्त्रप्रयोग में मुख्यता 'देव' की है । देव के स्वरूप के विषय में जैन धर्म की विशिष्ट तत्त्वप्रणाली है ।

पाँच प्रकार के देव है । तीर्थंकर-वैमानिक-ज्योतिष्क-व्यंतर-भवनपति । तीर्थंकर देव लोकोत्तर है । उनकी उपासना मुक्ति के आशय से होती है । सकाम साधक को उनसे कोइ सहाय प्राप्त नहीं होती । क्योंकि वे स्वयं वीतरागी है । मनुष्यो की आकांक्षा पूर्ति वैमानिकादि चार प्रकार के देव से ही हो सकती है । वैमानिक देव पूर्व के पुण्य-स्नेह-मित्रता आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से वश होकर मनुष्यो को सहाय करते है । ग्रहादिस्वरूप ज्योतिष्क देव का प्रभाव प्रत्यक्ष है । अधिकांश तन्त्र साधना में व्यंतर और भुवनपति देव निकाय के देव की उपासना होती है । भूत-प्रेत-पिशाचादि व्यंतर निकाय के देव है और यक्ष-यक्षिण्यादि भुवनपति निकाय के । वैमानिकादि चार प्रकार के देव सम्यग्दृष्टि भी होते है और मिथ्यादृष्टि भी । सम्यग्दृष्टि देव जिनमार्ग में श्रद्धा रखते है और जिनभक्तो को सहाय करते है । सम्यग्दृष्टि देव स्मरण मात्र से जिनभक्तो की वैयावृत्य करते है, शांति करते है समाधिप्रदान, उपसर्गनिवारण करके सहायक बनते है । **(वेयावच्चगराणं, संतिगराणं, सम्मद्दिट्ठि समाहिगराणं)** मिथ्यादृष्टि देव जिनमार्ग को साधना में बाधक होते है । निष्काम मोक्षमार्ग की साधना में सहाय प्राप्ति के लिये और बाधानिवृत्ति के लिये दैवी शक्ति की उपासना की जाती है । दैवी साधना का अन्य एक हेतु 'जिनशासन की प्रभावना' है । मन्त्र-विद्या की सहायता से जिनशासन को जनजन के हृदय में स्थिर करनेवाले श्रमण को अष्ट प्रभावक में से एक 'मन्त्रप्रभावक' की उपाधि प्राप्त होती है । जिनशासन का इतिहास ऐसे मन्त्रप्रभावकों से समृद्ध है । गणधर भगवंत, श्रुतकेवली भगवंत के इलावा आर्यश्री खपुटाचार्य, आर्य श्री रोहणाचार्य, श्रीसिद्धसेनदिवादरसूरिजी, नागार्जुन, श्रीयशोभद्रसूरि, श्रीमानदेव-सूरिजी, श्री जिनेश्वरसूरिजी, श्री वादीदेवसूरिजी, श्री हेमचंद्रसूरिजी, श्रीमलयगिरि-सूरिजी, श्रीमुनिसुंदरसूरिजी, श्रीशांतिसूरिजी इत्यादि अनेक मन्त्रविद्याशक्तिसम्पन्न आचार्य जैन परम्परा में हुए ।

शासन के रक्षक २४ यक्ष तथा २४ यक्षिणी की सहायता से यह कार्य होता है । जैसा कि पहेले कहा जा चूका है दैवी साधना में हिंसा का आश्रय वर्ज्य है और मलिन आशय वर्ज्य है । चारित्र-संयम-मानसिक एकाग्रता और जाप पर ही विशेष बल दिया जाता है । प्रतिष्ठा साधनादि विधान में जो पूजाविधि आदि का विशेष प्रयोग देखा जाता है वह नैमित्तिक और आप वादिक है ।

इस प्रकार जैन धर्म के अनुसार तन्त्रप्रयोग में सहायक भुवनपति और व्यंतर कोटिके देव है । शासन रक्षक यक्ष-यक्षिणी, १६ विद्यादेवी, जयादि देवी, श्रुतदेवी, क्षेत्रपाल, लोकपाल, दिक्पाल इत्यादि देव सकाम साधना के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहायक है ।

जैन धर्म के तन्त्रप्रयोग का यह संक्षिप्त निरूपण है । विशेष जिज्ञासुओं को निवेदन है कि वे अधिकृत शास्त्रों का अवगाहन करे ।

स्तोत्र :

देवता की प्रसन्नता हेतु तन्त्रप्रयोग में जाप-यन्त्रपूजन-होम-पूजाविधि के साथ साथ 'स्तुति' का भी प्रयोग होता है । छंदोबद्ध काव्य में अभीष्ट देवता की स्तुतिपरक शब्द रचना को 'स्तोत्र' कहते है । साधारण स्तोत्र में सिर्फ देव विशेष का महिमागान होता है । तन्त्रशास्त्रीय स्तोत्र में मन्त्र-बीज-आम्नाय-पूजाविधि-रहस्य का प्रत्यक्ष या परोक्ष उल्लेख रहेता है । इसलिये तन्त्रशास्त्रीय स्तोत्रो का प्रभाव भी अधिक रहेता है ।

'श्रीत्रिपुराभारतीस्तव' ऐसा ही एक प्राचीनतम तन्त्रशास्त्रीय स्तोत्र है । व्याख्याकारों में उसका प्रचलित नाम 'लघुस्तवराज' है । मूलतः यह स्तोत्र त्रिपुरादेवी का है । फिरभी 'लघुस्तव' नामाभिधान का कारण यह कहा जाता है कि स्तोत्र के कर्ता का नाम लघ्वाचार्य है । व्याख्याकार श्री सोमतिलकसूरिजी ने स्तोत्र की अंतिम पुष्पिका में यह स्तोत्र के कर्ता का लघ्वाचार्य के नाम से उल्लेख किया है ।[१] स्तोत्र के अंतिम पद्य में 'लघु' शब्द का श्लेष है जिससे कर्ता का नाम ध्वनित होता है । तीसरा कारण व्याख्या की उत्थानिका में है कि एक 'लघु' बालक ने इस स्तोत्र की रचना की है । इस विषय का अंतिम निष्कर्ष ऐतिहासिक संशोधन के बाद ही आ सकता है ।

त्रिपुराभारतीस्तवः की विषयवस्तु :

प्रस्तुत स्तोत्र की अधिष्ठात्री भगवती त्रिपुरादेवी है । तन्त्र-शास्त्र में त्रिपुरादेवी के अनेक नाम प्रचलित है । तन्त्रशास्त्रीय मन्त्र साधना विधि गुप्त होता है और केवल गुरुमुख से ही प्राप्त होता है । इसलिये गुरु के भेद

---

१. इति श्री लघ्वात्चार्यविरचितः लघुस्तवराजः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से साधना मार्ग में विभिन्नता होना स्वाभाविक है । 'सम्प्रदाय के भेद से त्रिपुरा देवी के नाम में भेद देखने मिलते है । व्याख्याकार सूरिदेव ने प्रथम पद्य में त्रिपुरादेवी के नामभेद के विषय में निर्देश किया है ।

अथ किमेषा त्रिपुरा उत त्रिपुर भैरवी ?....तत्कथमिति सत्यम्..... बहवोऽस्याः उद्धारप्रकाराः सम्प्रदायाः पूजामार्गाश्च..... इत्यतः क्वचित् मन्त्रोद्धारभेदात्, क्वचिद् आसनभेदात्, क्वचित् सम्प्रदायभेदात्, क्वचित् पूजाभेदात्, क्वचिन् मूर्तिभेदात्, क्वचिद् ध्यानभेदात् बहुप्रकारा एषा त्रिपुरादेवी क्वचित् त्रिपुरभैरवी, क्वचित् त्रिपुरभारती, क्वचित् नित्यत्रिपुरभैरवी, क्वचित् त्रिपुरललिता, क्वचिद् अपरेण नाम्ना, क्वचित् त्रिपुरैव उच्यते ।

तन्त्र शास्त्र में बीजभूत मन्त्राक्षरो को 'पुर' संज्ञा दी है । **ऐँ क्लीँ** और **सौँ** यह तीन वर्ण सरस्वती के बीजमन्त्र है । यह तीन 'पुर' की अधिष्ठात्री होने के कारण सरस्वती देवी का नाम 'त्रिपुरा' है । स्तोत्र में भारती, वाग्वादिनी इत्यादि शब्दो द्वारा 'त्रिपुरा' का उल्लेख हुआ है, प्रथम पद्य में **'वाङ्मयी'** शब्द से त्रिपुरा देवी सरस्वती का ही नाम है यह लघुराज ने स्वयं प्रमाणित किया है । पंजिकावृत्ति में भी त्रिपुरा पद का सरस्वती अर्थ उपलब्ध होता है ।[१]

समग्र स्तोत्र में श्रीत्रिपुरादेवी का महिमागान कवि ने अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है । त्रिपुरादेवी के मूलमन्त्र, बीजाक्षर, आम्नाय, ध्यान, पूजाविधि इत्यादि स्तोत्र में गर्भितरूपेण अन्तर्निहित है । तान्त्रिक साधनामार्ग सम्पूर्णतः गुर्वाधीन है । केवल गुरु ही मन्त्र की पूर्ण प्रयोग विधि जानता है । किसी शास्त्र में मन्त्र का प्रयोग विधान शतप्रतिशत प्रगट नही किया जाता अपितु बहुतांश गुप्त रखा जाता है । केवल शास्त्र के शब्दो का आधार लेकर साधना करने वाला साधक विपरीत फल पा सकता है । व्याख्याकार श्री सोम-तिलकसूरिजीने भी अपनी व्याख्या में अनेक बातों के गुरुपरम्परा के अधीन

---

१. पद्य : २०-त्रिपुरेति नाम्ना भारत्याः सरस्वत्याः....इयं स्तुतिः.... बोद्धव्या ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनाकर गुप्त रखी है ।[२] त्रिपुरास्तोत्र में या कोई भी तान्त्रिक स्तोत्र में मन्त्रादि विधान को गुप्त रखा जाता है ।

त्रिपुराभारतीस्तव में भगवती त्रिपुरा के विविध स्वरूप, मन्त्राक्षर, साधनाविधि, ध्यान और उपासना फल का वर्णन है ।

स्तोत्र का संक्षिप्त विषय दर्शन यहाँ प्रस्तुत है ।

(पद्य-१) प्रथम तीन पाद में त्रिपुरादेवी के तीन मन्त्रबीजाक्षरों का उद्धार है **'ऐन्द्रस्य'** पद में **ऐँ** बीज है । **शौक्लीँ** पद में **क्लीँ** बीज है । **एषासौ** पद में **सौँ** बीज है । यही त्रिपुरादेवी का मूलमन्त्र है । **(त्रिपुरामूलमन्त्रो ज्ञेयः)** । इन मन्त्राक्षरो साथ स् और ह् वर्ण का संयोग होने से कूटाक्षर बनते है । मूलस्थ 'सहसा' पद से इस बात का निर्देश मिलता है ।

(पद्य २-३-४) द्वितीय-तृतीय और चतुर्थ पद्य में तीन बीजाक्षरों के माहात्म्य का वर्णन है । ऐँकार का ध्यान करने से संसार के दुःखो से मुक्ति मिलती है । ऐँकार ज्ञानशक्ति का बीज है । ऐ उसका सङ्केत पद है । ऐँकार साक्षात् कुण्डलिनीशक्ति स्वरूप है । विश्व के समस्त व्यापार का संचालन मात्रारूप कुण्डलिनी शक्ति द्वारा होता है । अज्ञान-आश्चर्य या आतंक के कारण अनुस्वार रहित 'ऐ' पद के उच्चारण से अमृत के समान मधुर वाणी का प्रसाद प्राप्त होता है । ललाट स्थान में आज्ञाचक्र पर मेघधनुष्य के समान वर्णयुक्त ऐँकार ध्येय है ।

क्लीँकार कामराज बीज या इच्छाशक्ति बीज है । ई उसका संकेत

---

२. यतो न सर्वं गुह्यमेकमुष्ट्या प्रदेयं गुरुभिः ॥२॥
विस्तरस्त्वस्य गुरुमूखाज् ज्ञेयः ॥१४॥
गुरुपरम्परातोऽवसेयाः ॥१७॥
सम्प्रदायान्वितो युक्तोऽयं मन्त्रोद्धारः ॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद है । यह बीज गूढ और महाप्रभावशाली है । विरल पुरुष को यह प्रभाव अनुभव में आता है । यह मंगल स्वरूप है । हरेक शुभकार्य में उसका स्मरण लाभदायी है । ब्रह्मरंध में सहस्त्रारचक्र पर श्वेतवर्णीय क्लींकार ध्येय है ।

सौंकार प्रेतबीज या क्रियाशक्ति का बीज है । 'औ' उसका संकेत पद है । यह बीज तत्कालवचनप्रवृत्तिरूप फल देता है । यह बीज का ध्यान जडता को नष्ट करता है । हृदय में विशुद्धिचक्र पर सूर्य समान रक्तवर्णीय सौंकार ध्येय है ।

(पद्य-६) यह तीन बीज महाचमत्कारी है । कोई भी विधि से ध्यान करने पर मनोवांछित फल देने में समर्थ है । तीन बीजो का छः प्रकार से ध्यान होता है—सव्यंजन, अव्यंजन, कूटस्थ,-पृथक्, क्रम, और व्युत्क्रम । माहात्म्य के दर्शक इन पदो का तान्त्रिक अर्थ रहस्यपूर्ण है । व्याख्याकार सूरिदेवने रहस्य को भलीभाँति स्पष्ट किया है ।

भगवती श्री त्रिपुरादेवी के बीजाक्षर रूप मन्त्र ध्यान के बाद स्वरूप ध्यान का वर्णन अग्रिम पाँच पद्य में है ।

(पद्य-७) विद्वत्ता की प्राप्ति के लिये । गौर वर्णीय भगवती की मूर्ति का ध्यान करना चाहिये । विद्वत्ता के हरेक प्रकार श्रीत्रिपुरा की कृपा से सिद्ध हो जाते है । कवित्व शक्ति प्रदायक ध्येय स्वरूप इस प्रकार का है । देवी के देह की कांति मचकुंद पुष्प के समान शुक्ल है, देवी की चार भुजा है, बायें हाथो में पुस्तक और अभयमुद्रा है, दाहिने हाथ में अक्षसूत्र है और आशीर्वाद मुद्रा है । कमलपत्र के समान नेत्र से करुणा की धारा बरसती है । [साधरणतः सरस्वती की मूर्ति में चार भुजा होती है । दो भुजा में देवी वीणा धारण करती है ऐसा देखने मिलता है । जैन शास्त्र के मुताबिक सरस्वती मचकुंद के पुष्प, पूर्णिमागत चंद्र, गाय का दूध, जलबिंदु के समान श्वेत वर्ण युता है । वह एक हाथ में सरोज और एक हाथ में पुस्तक धारण करती है । और कमल के आसन पर बिराजित है (कुंदिंदु-गोक्खीर-तुसार वण्णा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरोजहत्था कमले निसण्णा ।
वाएसिरी पुत्थयवग्ग हत्था
सुहाय सा अम्ह सया पसत्था ॥

आचार्यश्रीबप्पभट्टिसूरिजी रचित अनुभूतसिद्ध सारस्वत स्तोत्र में भगवती सरस्वती का वर्णन इस प्रकार है-भगवती का वाहन हंस है **(कलमराल-विहंगम वाहना,)** वस्त्र उज्ज्वल है । (सितदुकुलविभूषणलेपना) चन्द्रमा समान मुख है **(अमृतदीधिति बिंबसमाननां)** कैतकी के पत्र समण विशाल नेत्र है । (विततकेतकीपत्रविलोचने) भगवती के हाथ में अमृत भरा हुआ कमण्डलु है (अमृतपूर्णकमण्डलुधारिणी), दूसरे हस्त में माला है (करसरोरुहखेलन चञ्चला तवविभाति परा जपमालिका) सरस्वती देवी का लक्षण चिह्न हंस ही है । **(धवलपक्षविहङ्गम लाञ्छिते)**

इस प्रकार सरस्वती के अनेक स्वरूप है ।]

(पद्य-८) श्वेतकमल के समान शुक्लवर्णीय भगवती के ध्यान से निरंकुश वक्तृत्वसिद्धि प्राप्त होती है । ध्याता, अपने मस्तक पर बिराजमान देवी अमृतवर्षा कर रही है और यह अमृत सहस्त्रार द्वार प्रवेश होकर सारे शरीर में फैल रहा है, ऐसा ध्यान करे ।

(पद्य-९) रक्तवर्णी मूर्ति के ध्यान से आकर्षण होता है । सिंदूर समान देवी का वर्ण और उसकी प्रभा से चारो और फैलते हुए रक्तरंग का ध्यान वशीकरण करता है ।

(पद्य-१०) स्वर्णवर्णीय और स्वर्णाभरण से विभूषित देवी का ध्यान करने से लक्ष्मी स्थिर रहती है ।

(पद्य-११) देवी के रौद्र स्वरूप का ध्यान चित्त की निर्मलता एवं सर्वसिद्धिमय भगवती स्वरूप का प्रदायक है । यह ध्यान 'आरभटी' नामक वीरसाश्रया वृत्ति से होता है । सत्यवान् एवं निर्भीक व्यक्ति ही यह ध्यान को सिद्ध कर सकता है ।

(पद्य-१२) इस पद्य में देवी का प्रभाव व्यक्त करने हेतु श्री वत्सराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नृपति का उदाहरण उपस्थित किया है । पूर्व सम्पादक साक्षर श्री जिनविजयजी लिखते है—'हमारा अनुमान है कि यह वत्सराज (जिसका प्राकृतनाम वच्छराज है) प्रतिहारवंशीय सम्राट् था, जो पहले राजस्थान प्रदेश का एक सामान्य सा प्रतिहार ठाकुर था और पीछे से अपनी प्रभुशक्ति के प्रभाव से सारे उत्तरापथ का बड़ा सम्राट् बना । राजस्थान के कुछ वृद्ध चारणों के मुख से सुना है कि वत्सराज पडिहार सिरोही जिला के अन्तर्गत अजारी नामक स्थान में जो प्राचीन त्रिपुरा भारती का पीठ था उसका अनन्य उपासक था और वहाँ पर उसने त्रिपुरादेवी की विशिष्ट आराधना-उपासना की थी । और उसके कारण वह पीछे से एक बड़ा सम्राट् बन सका था । चारण लोग प्रायः शक्ति के उपासक होते है । उनका यह भी कथन था कि लघु-पण्डित स्वयं चारण जाति का कवि था और वह उक्त त्रिपुरा पीठ का मुख्य अधिष्ठाता था । इस किंवदन्ती में कितना तथ्यांश है इसका कोई अन्य प्रमाण ज्ञात नहीं है ।'

(पद्य-१३) इस पद्य में भी देवी का माहात्म्य व्यक्त हुआ है ।

(पद्य-१४) चारों वर्ण के साधक भगवती की स्वयोग्य द्रव्य से पूजा करके अपनी मनोकामना पूर्ण कर सकते है । देवी की पूजाविधि का वर्णन इस पद्य में है ।

(पद्य-१५) त्रिपुरादेवी परा शक्तिरूपा है । जगत का सर्जन-नियमन-संहरण त्रिपुरा देवी के वश में है । देवी का स्वरूप और महिमा सामान्य बुद्धि से परे है । देवी की महिमा का अनुभव योगिजन को होता है ।

(पद्य-१६) विश्वकी हरेक वस्तु का नियमन सत्त्व-रजस्-तमस्, उत्पत्ति-स्थिति-लय, राग-द्वेष-मोह इत्यादि त्रिक-त्रिक रूपेण होता है । त्रिकरूपेण नियमित हरेक वस्तु श्रीत्रिपुरा देवी में अन्तर्हित होती है ।

(पद्य-१७) भगवती के सात स्वरूप है । देवी के स्वरूप का ध्यान करने से भक्तो को प्रत्यक्ष प्रभाव का अनुभव होता है ।

लक्ष्मी :— राजकुल में प्रवेश होता है (राज्य द्वारी आपत्ति से मुक्ति) होती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जया :— रण में विजय (विवाद में जय) प्राप्त होता है ।

क्षेमंकरी :— पशुभय का निवारण होता है ।

शबरी :— दुर्गम मार्ग में सहाय और मार्ग की प्राप्ति होती है ।

महाभैरवी :— भूत-प्रेत-पिशाचादि कृत बाधा का निवारण होता है ।

त्रिपुरा :— चित्त की भ्रान्ति टलती है, मानसिक स्वास्थ्य मिलता है ।

तारा :— जल के भय का निवारण होता है ।

साधारण आदमी को यह वर्णन लालच पैदा करेगा । इसीलिये व्याख्याकार श्री सोमतिलकसूरिजी ने इन सात ध्यातव्य स्वरूपो को गुप्त रखा है ।[१] तन्त्र मार्ग दुर्गम है । अधिकार प्राप्त किये विना सिर्फ अपनी मरजी से उसमें प्रवेश करने से बहुत बड़ी हानि हो सकती है । गुरु का मार्गदर्शन यहाँ नितान्त आवश्यक है ।

(पद्य-१८) भगवती त्रिपुरादेवी के २४ नाम है । इन २४ नाम के द्वारा बीजाक्षर मन्त्रो का उद्धार होता है । इन बीजाक्षरों से त्रिपुरादेवी का मूलमन्त्र प्रगट हुआ है । चौसठ योगिनी-योगिनीदोषविघातकयन्त्र इत्यादि मन्त्रविधान वृत्ति में है ।

(पद्य-१९) मन्त्र शास्त्र प्रसिद्ध सोलह स्वर और पैंतीस व्यंजन से त्रिपुरादेवी के वीस हजार से ज्यादा नाम निष्पन्न होते है । यह नाम आगमोक्त है और गुह्य है ।

(पद्य-२०) **ऐँ क्लीँ** इत्यादि बीजमन्त्रो का उद्धार विधि प्रस्तुत है । यह विधि भी गुरु परम्परा से ही ज्ञात होता है । व्याख्या में मन्त्रोद्धार के फल का अतिशयित वर्णन उद्धृत किया है ।

(पद्य-२१) अंतिम पद्य उपसंहार रूप है । इस पद्य में लघुत्व पद का श्लेष करके कवि ने अपना नाम व्यक्त किया है ।

---

१. तत्तत् कार्येषु साहाय्यदायिनीनां ध्येयरूप-वर्णायुध-समृद्धयो मुद्राश्च गुरुपरम्परातोऽवसेयाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार :

इस विमर्श में तन्त्र की दार्शनिक और प्रायोगिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त विवरण करने का प्रयास किया है । श्रीत्रिपुराभारतीस्तव की वृत्ति का विद्यार्थी भाव से अवगाहन करते करते यह विमर्श प्रगट हुआ है । इसको केवल विद्यार्थीओ को जिज्ञासापूर्ति के लिये शब्दो में ढाल दिया है ।

जैन श्रमण होने के नाते सावद्य और अवद्यानुबंधी तन्त्रप्रयोग में विमर्शकार की कोई रुचि नहीं है । न कोइ अनुमोदना का भाव है । अध्येतागण, पाठकगण, और विवेचक गण इसको अन्यथारूपेण ग्रहण न करे ऐसी अपेक्षा है ।

मार्गशीर्ष शुक्ला १३, २०५९
३०, जैन मरचन्ट सोसायटी
पालडी, अहमदाबाद

वैराग्यरतिविजय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरा ध्यान न जो करे,
भगवती ! कैसे बने वो कवि ? ।

आचार्य दंडीने सरस्वती को सर्वशुक्ला कहा, कवयित्री विज्जिकाने इसका प्रतिवाद किया, लिखा-

इन्दीवरदलश्यामां विज्जिकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

सरस्वती सर्वशुक्ला है, इस विधान में सौन्दर्य, निर्दोषता और प्रभावकता अभिप्रेत है । विज्जिका अपने आपको वाग्देवता का अवतार समझती थी, श्यामवर्णा होना प्रशस्य नहि माना गया, तो विज्जिकाने अपनी ज्ञानगरिमा और कवित्वप्रतिभाको प्रस्तुत करके सरस्वती को श्यामवर्णा प्रतिपादित की ।

श्री लघ्वाचार्य ने श्रीत्रिपुराभारतीस्तव में सरस्वती के अनेकविध सौंदर्य की मंगलगाथा प्रस्तुत की है, यद्यपि यह स्तोत्र मन्त्रगर्भित है, तन्त्रशास्त्रीय है; फिर भी यहाँ पर काव्यतत्त्व मनोरम है ।

सरस्वती शुक्ल और श्याम ही नहि है । अनेक रंगछटा सरस्वती ने धारण कर ली है ।

'भालमध्य में इन्द्रधनुष की प्रभा, मस्तक पर चन्द्रप्रभा का तेज और हृदय में सूर्य किरण की उपमा दे कर त्रिविधरूपा सरस्वती प्रथम स्तुति में वर्णित की है ! अलंकार तो गौण है, मुख्य है रस या भाव । शृंगाररस का स्थायीभाव रतिभाव है, इसे भक्तिसम्प्रदाय ने रतिभाव के रूप में आबद्ध नहि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखा । प्राचीन परम्परा थी । नायक-नायिका का आलंबन न हो वहाँ केवल रतिभाव मानना । भक्तिसम्प्रदाय ने देव-देवी के आलंबन को भी रसजनक माना । भक्तिरस की स्थापना की गइ । शांत रस में निर्वेदभाव प्रमुख रहता है । भक्तिरस में समर्पणभाव । और स्तोत्रसाहित्य का एक मात्र आधार बना भक्तिरस । लघ्वाचार्य भक्तिरस के उन्मत्त गायक है । आपने लिखा हुआ यह वृत्त अद्‌भुत है ।

दृष्ट्वा सम्भ्रमकारी वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं,
येनाकूतवशादपीह वरदे ! बिन्दुं विनाऽप्यक्षरम् ।
तस्याऽपि ध्रुवमेव देवि ! तरसा जाते तवानुग्रहे;
वाचस्सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ॥

केवल यह एक ही स्तुति इतनी तो भावप्रवण है कि भक्तिरस के सहस्रसंवेदन से मन भर जाता है ।

सरस्वती को याद करना तो लाभकर है ही । सरस्वती का मन्त्रबीज ऐंकार भी लाभकर है, और कितनी हद तक ? आदमी गभराकर ऐ ऐ करने लगता है, बिन्दु से विहीन ऐ-कार हो लेकिन सरस्वती का अनुग्रह ऐसे आदमी पर हुआ तो वह भी अमृतमधुरवाणी से अलंकृत हो जाता है ।

इसे अतिशयोक्ति कहे, स्वभावोक्ति कहे या फिर उत्प्रेक्षा ? उद्दाम कल्पना उत्प्रेक्षा में होगी । चित्तरंजक वस्तुविन्यास स्वभावोक्ति में होगा और असंबंध में संबंध रूप अतिशयोक्ति भी यहाँ हो सकती है । कहाँ भीरु आदमी का ऐ ऐ रव और कहाँ महासरस्वती प्रसाद रूप ऐंकार ।

सरस्वती का साक्षात् दर्शन कराते हुए लघ्वाचार्य लिखते है :

वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्त्रजं दक्षिणे,
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरा कर्पूरकुन्दोज्जवलाम् ।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयनां स्निग्धप्रभालोकिनीं

अतिशय सरल शब्दन्यास करके लघ्वाचार्य रुकते नहीं, यहाँ पर कवित्व दिखाना है, स्तुति में भक्ति है और भक्ति का रस शब्दों से व्यक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है । सरस्वती के दर्शन आह्लादजनक है । सच है, सरस्वती का संस्तव भी तो आह्लादजनक होना चाहिये । सरस्वती के हाथ में पुस्तक है, माला है, सरस्वती के हाथ आशिष दे रहे है । सरस्वती अतिशय सौंदर्यवती है और सरस्वती की आँखे कृपारस से छलक रही है । इतना कहकर रुक जाना सामान्य कवित्व है, लघ्वाचार्य इस आलम्बनविभाव से भावोन्मत्त हो कर कहते है :

ये त्वामम्ब ! न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥
"तेरा ध्यान न जो करे, भगवती कैसे बने वो कवि ?"

यह अर्थान्तरन्यास का असामान्य उदाहरण है, रसधारा अपने आप अलंकार बना लेती है । अर्थयोजना से अलंकार तक पहुँचना साधारण कक्षा है । रससिक्त अलंकार ही उत्तमकक्षा है । लघ्वाचार्य अपनी कला का यश सरस्वती को ही देते है । सरस्वती का ध्यान वाक्कलाका प्रधान कारण है ।

ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां,
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्तं विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजात्;
तेषां भारति ! भारती सुरसरित्कल्लोललोर्मिभिः ॥

धवलकमल की सुन्दरता से समलंकृत सरस्वती मेरे मस्तक पर बिराजमान है । मेरे शिर पर अमृतवर्षा हो रही है, सरस्वती द्वारा । यह अनुभव यह ध्यान मुखरूपी कमल से गंगा के लोलविलोल सहज तरंगों की तरह वाणी का प्रवाह निर्मित करता है ।

कमल से सुरभि नीकले और नदी नीकल पड़े, फर्क है, यहाँ कमल से गंगा नीकल रही है, यह सादृश्य समुचित नही है और यही कविता है । उत्प्रेक्षा या अतिशयोक्ति ।

आगे कवि कहते है :

माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥१०॥

लक्ष्मी मदमत्त हस्ति के कर्णताल की तरह अस्थिर है, लेकिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरस्वती के ध्यान से स्थिर हो जाती है । स्थिरता भी माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरला होती है अर्थात् इतनी लक्ष्मी उपलब्ध होती है कि घर के आंगन में मदमत्त हाथी के कर्णताल चलने लगते है । यहाँ विरोध-अलंकार है ।

आजकल कविताविश्व अलंकार प्रधान नही रहा, भावधारा कविता की प्रधान संपदा मानी गई है । लघ्वाचार्य ने अपनी भावधारा प्रचुर आवेश से व्यक्त की है ।

अल्पप्रसिद्धवृत्त **आचार्य श्रीसोमतिलकसूरिजी** ने इस मन्त्रगर्भित स्तोत्र की व्याख्या बनाइ है, जो इस सम्पादन की आधारशिला है । क्योंकि त्रिपुराभारतीस्तव कोई जैनपरम्परागत स्तोत्र नही है, व्याख्याकार ने त्रिपुराभारती पर लिखा तो स्तव परम्परा के साथ कुछ सम्बद्ध हुआ । मुख्यतः व्याख्या मन्त्र और तन्त्र के विषय पर ही है । इस ग्रन्थ के सम्पादक मेरे वडील भ्राता परम पूज्य बहुश्रुत **मुनिप्रवर श्री वैराग्यरतिविजयजी महाराज** ने मन्त्रतन्त्र की परम्परा और जैनधर्म का सर्वांगीण विश्लेषण प्रस्तावना में किया है । व्याख्याकार ने काव्यतत्त्व व्याकरण आदि की दृष्टि से जो उन्मेष दिखाये है, हम उन्हें देखेंगे ।

तीसरी स्तुति में '**सूक्तिसुधारसद्रवमुचः**' प्रयोग है । आचार्यश्री ने व्याख्या में विवेक किया-**यद्यपि च रस-द्रव्योरेकार्थता, तथाप्यत्र विशेषः । अमृतं हि देवभोज्यं रसरूपमेव भवति । तस्यापि द्रवः सारोद्धारो निर्यासः इत्यर्थः** । सुधा का रस देवो का भोजन है । उसका भी अर्क जो अतिमधुर होता है वह है द्रव । रस प्रवाही है तो कुछ द्रव घट्ट, दूध और मलाई जितना यह फर्क है । मूलकारके हार्द को स्पष्ट करना व्याख्याकार का कर्तव्य है । आचार्यश्री ने यह सफलता से निभाया है ।

सातवी स्तुति में मूलकार ने देवी के चार हाथ है, बताया नही । व्याख्याकार ने स्पष्ट किया : "**चतुर्भुजत्वाद् भगवत्याः पुस्तकाभय-दानाऽक्षमाला-वरव्यग्रकरत्वं युक्तम्**" । (भगवती के हाथ में पुस्तक, अभयदान, अक्षमाला और वर इन चारो की उपस्थिति स्तुति में बताई है, क्योंकि भगवती के हाथ चार है ।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठवी स्तुति में "**तेषां वक्त्राम्बुजात्**" वाक्यप्रयोग है । आचार्यश्री स्पष्टता करते है : **वक्त्राम्बुजादित्यत्र जातिव्यपेक्षया एकवचनमिति** । अनेक ध्याताओ बहुवचन में और उनके वक्त्राम्बुज एकवचन में हो नही सकते लेकिन एकवचन में जाति की व्यपेक्षा है । फलतः अनेक रूप अनेकविध लोग भी भले भगवती का ध्यान करे । फलप्रसाद समान मिलता है, यह ध्वनि प्रतीत हो सकता है ।

नवमी स्तुति में आचार्यश्री लिखते है : "**अनन्यमनसः**" **इति पदमुभयत्रापि डमरूकमणिन्यायेन प्रयोज्यम्** । देवी का ध्यान अनन्यमना हो कर करनेवाला अनन्यमन वशीकारी हो सकता है ।

अग्याहरवीं स्तुति में आचार्यश्री ने "**आर्भटी**" शब्द की व्याख्या दी है । '**आर्भट्या-उद्धतया वृत्त्या**' उत्कटवृत्ति का ध्यान आर्भटीका भावार्थ है ।

आगे फिर शब्द प्रयोग में **आरभटीशब्दविशेषस्तु सात्त्वती-कैशिकी-प्रमुखवृत्तयो हि शान्ताः । आर्भटीवृत्तिस्तु वीररसाश्रया । आर्भटी-आरभटीशब्दविशेषस्तु वर्षावरिषादिशब्दवद् न दोषः** ।

आर्भटी शब्द, आरभटी से आया है । उसे दोष न माने । मूलकार को समर्थित करना जैनाचार्यों की प्रसिद्ध परम्परा है । आर्भटी शब्द को ग्राम्य कहकर अपनी वैदुषीका टंकार करना आचार्यश्री ने पसंद नहि किया ।

तेरहवी स्तुति में **चण्डि** ! सम्बोधन की स्पष्टता देखो :

चन्डीत्यामन्त्रणं, न सुखाराध्या भगवतीति रौद्रशब्दोपादानम् । माता को चंडी कहना इसलिये जरुरी था, कि इस माता की आराधना कष्टसाध्य है ।

व्याख्या के साथ पंजिकावृत्ति भी सम्पादित की गइ है । दोनो टीकाए मन्त्रसन्दर्भ से सम्बद्ध है । इसलिये यहाँ छन्दोनिर्देश, अलंकारवर्णन या रसानुभूति का कोइ स्थान नही है ।

श्रुतदेवता का संनिधान चतुर्दशपूर्व में था । पूर्वशास्त्र मन्त्रगर्भित थे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व के सभी मन्त्रो के मूल में पूर्व शास्त्र है । यह मन्त्रगर्भित स्तोत्र जैन नहि, फिर भी व्याख्याकार आचार्य जैन है । पूर्वशास्त्र की किसी परम्परा का अनुसन्धान आचार्यश्री ने व्याख्या में किया है ।

सद्-असद् विवेक से सम्पन्न महात्माओ के लिये यह सम्पादन आत्मा की उपलब्धि का आलंबन बनेगा यही शुभकामना !

मार्गशीर्षकृष्ण पंचमी
वि० सं० २०५९ **प्रशमरतिविजय**
जैनमर्चन्टसोसायटी
अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवेश

भगवती भारती की उपासना भारतवर्ष में प्राचीनकाल से चली आ रही है ।

माँ भारती के प्रसाद के बिना व्यक्ति कभी शक्तिसम्पन्न नही होता है । जैन एवं जैनेतर दोनों परंपरा में भगवती भारती की उपासना प्रबल रूप से चली आ रही है ।

जिनशासन की कोइ भी पोशाल ऐसी नहि जहाँ हंसवाहिनी का स्थान न हो । हर पोशाल में उनकी मूर्ति अथवा चित्र की स्थापना रहती थी ।

जैन आचार्य वृद्धवादिसूरिजी, आचार्य बप्पभट्टसूरिजी, आचार्य हेमचन्द्रसूरिजी, उपाध्याय यशोविजयजी, इन सब जैन साधकोने माँ भारती का साक्षात्कार कर अपूर्व प्रसाद वरदान पाये थे ।

अजैन साधको में कवि कालीदास, महापंडित देवबोधि, महाकवि हर्ष प्रमुख है । जिनका प्रकाण्डपांडित्य, अपूर्व कवित्व मा भारती के ही प्रसाद का फल था ।

आचार्य बप्पभट्टिसूरि महाराज ने अपने सिद्धसारस्वत स्तोत्र में विद्वत्ता एवं वैभव, समृद्धि एवं सौन्दर्य सब माँ सरस्वती के ही प्रसाद से सहज मिल जाता है, ऐसी घोषणा की है । वास्तव में माँ शारदा के प्रसाद के बिना मुक्ति या भुक्ति हर क्षेत्र में निष्फलता ही प्राप्त होती है ।

यह त्रिपुराभारतीस्तव माँ के प्रसाद को पाने का साधनामार्ग बतानेवाला उत्कृष्ट महिमासंपन्न स्तोत्र है । प्राचीन चारणकवियों की आख्यायिका इस स्तोत्र के सर्जन का श्रेय चारणकवि लघु को देते है । जो राजस्थान अजारी का निवासी था ।

माँ सरस्वती के अनेक रूप है, अनेक यन्त्र है । जिसमें त्रिपुराभारती भी उनका एक रूप है । एक सारस्वती शक्ति अनेक रूप में विलसती है । शारदा का प्रमुख साधना स्थल कश्मीर एवं काशी है । जहाँ अनेक साधकोने साधना करके सिद्धि पाइ । त्रिपुराभारती का प्रमुख शक्तिपीठ दक्षिण राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के शिरोहीजिले का अजारी गाँव जिसका प्राचीन नाम अजाहरी था उसके निकटवर्ती छोटी पहाडीयों के बीच मार्कंडेश्वर महादेव के निकट है ।

दूर सूदूर तक फैले हुए खजूरी के सहस्त्र पैडों के मध्य छोटी पहाडीयों के घेरावे में बहते दो-तीन झरणों के संगम से बने हुए द्रहके तटपर पुराणे छोटे मंदिर में माँ त्रिपुराभारती की अत्यंत प्राचीन श्याम मनोहर मूर्ति आसीन है । जो भव्य एवं अत्यंत प्रभावशाली है । लघुकवि इसी शक्तिपीठका अधिष्ठाता था ।

भगवती त्रिपुराभारती का शक्तिपीठ यह संगम स्थल है । पूरी अजारी गाँव की भूमि उसके प्रभाव क्षेत्र में है । तरुण हेमचन्द्र मुनि को माँ सरस्वती ने अजारी ग्रामस्थित महावीरचैत्य में प्रगट होकर वरदान दिया था । इस स्थल पर शताब्दीयों से जैन अजैन साधकोने साधना कर सिद्धि प्राप्त की । आज भी पा रहे है ।

ऐसी एक प्रबल परंपरा है कि माँ शारदा आठ मास कश्मीर में रहती है । वर्षा ऋतु में चार मास अजारी क्षेत्र में रहती है । दीपावली में यहाँ साधना करने से दिव्य अनुभव होता है । यह क्षेत्र अत्यंत उर्जासंपन्न एवं सातिशायी है । अनेक मूकबधिर वाचाहीन व्यक्ति अजारी क्षेत्र में माँ सरस्वती की मिन्नत कर वाक्पीडा से प्रायशः मुक्ति पाते है । मिन्नत में माँ को चाँदी की जीभ चडाई जाती है ।

माँ सरस्वती की साधना में जप एवं दशांश होम दोनों के योग से ही पूरी सफलता मिलती है । आचार्य बप्पभट्टसूरि एवं आचार्य मल्लिषेणसूरि के सरस्वतीकल्प में यह विधान स्पष्ट मिलता है । मंत्र एवं भौतिक द्रव्यों के द्वारा अभौतिकशक्ति को उजागर करना यही तंत्र है । कलियुग में तन्त्र ही सद्यः फलप्रद है ।

औदारिक एवं कार्मण की शक्ति को तैजस में उजागर कर, इडा और पिंगला में बहती प्राणधारा को सुषुम्णा में सम्मिलित कर माँ त्रिपुराभारती की सिद्ध होती है । हमें यह प्राप्त हो यही कामना...

जैन सोसायटी पो०शु० १० २०५९ **मुनि धुरंधरविजय**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्थानिका

सर्वज्ञं पुण्डरीकाक्षं शङ्करं नाभिसम्भवम् ।
प्रणम्य टीकां वक्ष्येऽहं सङ्क्षेपेण लघुस्तवे ॥

इह हि पूर्वं केनचिन्महानरेन्द्रेण निजसभायां दूरदेशाभ्यागतः समस्तशास्त्रपारङ्गमः कोऽपि पण्डिताग्रणीः स्वविद्याविशेषोत्कर्षं पृष्टः, शीर्षे स्वकरकमलविन्यासमात्रेण सर्वथा निरक्षरस्यापि शिशोर्गाङ्गतरङ्गानुकारिणीं तत्कालाभिनवकाव्यकर्त्तव्यतामाह । ततश्च सद्यो भूपभ्रूविक्षेपमात्रेण राजपुरुषैरुपाहूतः स्पष्टमस्पष्टोऽष्टवर्षदेश्यो बालकः संस्नाप्य कौसुम्भ-वस्त्रालङ्कृतः पुरस्तादुपवेश्य मस्तके दक्षिणहस्तं धृत्वा वदेति विदुषा साक्षेपं भाषितोऽनेककर्मक्षममन्त्रपदगर्भाम् ऐन्द्रस्येव शरासनस्येत्याद्येकविंशति-काव्यमयीं नवकोटिकात्यायनीस्तुतिं व्याजहार । तस्याश्च स्वतोऽपि मन्दमतिसत्त्वानुकम्पया विवरणमभिदध्महे ।

भाषा—

श्रीकौशल्यायनिं नत्वा वाग्देव्याश्च पदद्वयम् ॥
श्रीलघुस्तवकाव्यस्य कुर्वे भाषां यथामति ॥१॥

यह श्रीलघुस्तवराज, किस कारण से बनाया गया था इस विषय पर कुछ विचार किया जाता है । कुछ वर्षों पहले सब शास्त्रों का पारगामी एक श्रेष्ठ पण्डित घूमता घूमता किसी बड़े महाराज की सभा में आया । राजा ने उसको पूछा कि 'क्या आप चमत्कारिक विद्या जानते हैं ?' तब उसने प्रत्युत्तर दिया कि-'मैं किसी बिलकुल अनपढ़ बालक के शिर पर हाथ धर देता हूँ तो वह बालक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्काल श्रीगङ्गानदी की तरङ्गों के समान गहन और अस्खलित संस्कृतभाषा के श्लोकों को बोलना प्रारम्भ कर देता है' । यह सुनकर उस राजा ने अपने नौकरों को वैसे बालक को लाने के लिये इशारा किया । वे नौकर लोग तुरत ही एक आठ वर्ष की आयुष्यवाले और बिलकुल अनपढ़ बालक को ले आये । तब उस पण्डित ने लड़के को स्नान करा के लाल वस्त्र पहनाये और उस बालक को राजा के सम्मुख बिठा कर उसके शिर पर हाथ रखकर उच्चस्वर से कहा कि 'बोल !' तब वह बालक मनोवांछित सिद्धियों के देनेवाले ऐँ क्लीँ सौँ आदि बीजाक्षरों से युक्त इस स्तोत्र के इक्कीस श्लोकों से नवकोटि नामवाली श्रीत्रिपुरा देवी की स्तुति करने लगा । उन श्लोकों रहस्य का विशेष कठिन होने के कारण मन्दबुद्धि पुरुष उसको नहीं जान सकते हैं । इसलिये व्याख्याकार श्रीसोमतिलकसूरि कहते हैं कि हम से भी मन्दबुद्धि लोगों की सुविधा के लिए हम उस लघुस्तवराज स्तोत्र की व्याख्या करते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीत्रिपुराभारतीस्तवः

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्येललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः ॥
एषासौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोः सदाहःस्थिता
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ॥१॥[१]

● **श्रीसोमतिलकसूरिविरचिता ज्ञानदीपिका व्याख्या** ●

व्याख्या—**ऐन्द्रस्येवेति** । **एषा** = प्रत्यक्षा, **असौ** = अप्रत्यक्षरूपा **त्रिपुरा** देवी, **नः** = अस्माकम्, **अघं** = पापं दुःखं वा **छिन्द्यात्** = विनाशयेदिति सम्बन्धः "अघः दुःखे च पापे च" इत्यनेकार्थवचनात् । किंविशिष्टा देवी ? **वाङ्मयी** = वचनरूपताम्प्राप्ता । अन्यच्च **ज्योतिर्मयी** = अनिर्वचनीयतेजोरूपेत्यर्थः । अनेन गुरुमुखे प्रत्यक्षा ज्ञानरूपत्वादर्वाग्दशामप्रत्यक्षा चेत्युभयरूपपरमशक्तिध्यानेन दुःखपापच्छेदस्तज्ज्ञानां सुलभ एव । कथं ? **सहसा** = अप्रतर्कितमेव । लयो हि ज्ञानकारणमुच्यत इत्युक्तेः । कैः कारणभूतैः ? **त्रिभिः पदैः** विशेषणभूतैः । किं कुर्वती ? **ऐन्द्रस्य** = इन्द्रसम्बन्धिनः **शरासनस्य** = धनुषः इन्द्रधनुष इव हरितपीतसितासितमाञ्जिष्ठरूपपञ्चवर्णां **प्रभां** = कान्ति **दधती** = धारयन्ती । कथं ? **मध्येललाटं** = "पारेमध्येऽग्रेऽन्तः पष्ठ्या च" इति सूत्रेण विकल्पेन कर्मत्वम् । सर्वाङ्गस्य तेजोमयत्वेऽपि ललाट एव पञ्चवर्णोल्लासः । अन्यच्च **शिरसि** = मस्तके **अनुष्णगोरिव** = चन्द्रस्येव **सर्वतः** = समन्तात् **शौक्लीं** = शुक्लरूपां "तस्येदम्" इत्यण् प्रत्ययः, **कान्तिमातन्वती** = विस्तारयन्ती शुक्लः पटगुणस्तस्येयं शौक्ली एवमादेरणो [२]व्युत्पत्तिः । दशमद्वारे पूर्णशशाङ्कधवल-कान्तिरित्यर्थः । अन्यच्च **हृदि** = हृदयकमले **सदाहःस्थिता** सदा अहि =

---

१. अस्मिन् काव्ये समाप्तिपर्यंतं शार्दूलविक्रीडितमेव वृत्तम् ।

२. वृद्धिरिति पाठो युक्तोऽवगम्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिवसे स्थिता = वर्त्तमाना । **उष्णांशोः** = सूर्यस्य द्युतिः = कान्तिरिव । हृदये सुवर्णवर्णा भगवतीति सामान्यरीत्या प्रथमवृत्तार्थः ।

विशेषतश्चास्मिन् वृत्ते सामान्यविशेषाभ्यां त्रिपुराया मन्त्रोद्धारोऽस्ति, वक्ष्यते च प्रान्ते विंशे काव्ये

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं यत्राद्यवृत्ते स्फुटम् । इति,
मन्त्रोद्धारविधिर्विशेषसहितः सत्सम्प्रदायान्वितः ॥ इत्यादि च ।

स एव मन्त्रोद्धारः प्रकाश्यते यथा प्रथमपादे यत्प्रथममक्षरं तत्प्रथमबीजम्-(ऐङ्कारः)द्वितीयपादे द्वितीयमक्षरम्(क्लीँकारः) तृतीयपादे तृतीयमक्षरम् (सौ) तदपि हस्थितं हकारोपरि स्थितमिति ह्सौ जातं, हस्थितमिति विशेषणं पुनरावृत्या व्याख्यातम्, हकारेण बिन्दुना स्थितं निष्ठितं । कौलमते हि हकारो गगनमुच्यते, गगनञ्च शून्यं बिंदुरित्येकार्थमेव । ह्सौं सौं इति वा-इति तृतीयबीजाक्षरं त्रिपुरामूलमन्त्रो ज्ञेयः ।

ध्यानविभागोऽप्यत्रैव । आदिमं बीजं ललाटे पञ्चवर्णं, द्वितीयं शीर्षे श्वेतवर्णं, तृतीयं हृदये पीतवर्णं ध्येयम् । किञ्च सहसापदैरिति विशेषो ज्ञेयः । सह हकारसकाराभ्यां वर्त्तते इति सहसा बीजत्रयमपि सकारहकारयुक्तं स्ह्रैं स्ह्क्लीं स्ह्सौं इत्यादि विशेषो ज्ञेयः । तथा सर्वतः इत्यत्रापि विशेषोऽस्ति सरु-इति विभक्तं पदम् अतोऽस्माल्ललाटादनन्तरं शिरसि (क्लीँकारः) सरु-इति क्रियापदविशेषणम् । सह रुणा रेफेण वर्त्तत इति सरु, उकार उच्चारणार्थः । एतेन क्लीँकारेऽधो रेफः सिद्धः । सकारहकारसंयोगश्च पूर्वमेवोक्तस्तेन 'स्हक्लीँ' इति कूटाक्षरः सिद्धः । यदुक्तम्-

कान्तान्तवान्ताकुललान्तवामनेत्रान्वितं दण्डिकनीलनादम् ।
षट्कूटमेतत्त्रिपुराणवोक्तमत्यन्तगुह्यं शिव एव साक्षात् ॥१॥

कान्तं भवान्तं च कुलान्तवामनेत्रान्वितं दण्डिकुलं सनादम् ।
षट्कूटमेतत्त्रिपुराणवोक्तमत्यन्तगुह्यं शिव एव साक्षात् ॥२॥

इति पाठान्तरम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादयस्त्रिपुराविशेषाः कविहस्तमल्लोक्तास्त्रिपुरासारसमुच्चयाज्ज्ञेयाः ।

यदि वा सरु, इति सविसर्गं पदं, रेफमूलत्वाद्विसर्गाणाम्, तेन ह्सौः इति सविसर्गं पदमाम्नायान्तरे ज्ञेयम् ।

अथ किमेषा त्रिपुरा उत त्रिपुरभैरवी । यथोत्तरषट्कशास्त्रे-त्रिपुरा-मुद्दिश्योद्धारः कृतः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सम्प्रदायसमन्वितम् ।
त्रैलोक्यडामरं तन्त्रं त्रिपुरावाचकं महत् ॥१॥

पुनस्तत्रैव-

पूर्वोक्तं यन्त्रमालिख्य त्रिपुरावाचकं महत् ।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिपुरायोगमुत्तमम् ॥२॥

पञ्चरात्रशास्त्रे त्रिपुरा त्रिपुरेति श्रूयते । तत्त्वसागरसंहितायाञ्चैतैर्बीजाक्षरैस्त्रिपुरभैरवी कथिता । यथा

वाग्भवं प्रथमं बीजं द्वितीयं कुसुमायुधम् ।
तृतीयं बीजसञ्ज्ञं स्यात्तद्धि सारस्वतं वपुः ॥१॥

एषा देवी मयाख्याता नित्या त्रिपुरभैरवी ।
एषा सा मूलविद्या तु नाम्ना त्रिपुरभैरवी ॥२॥

तत्कथमित्याह । **सत्यम्**, बहवोऽस्या उद्धारप्रकाराः सम्प्रदायाः पूजामार्गाश्च । तथा च नारदीयविशेषसंहितायामुक्तम्-

वेदेषु धर्मशास्त्रेषु पुराणेष्वखिलेषु च ।
सिद्धान्ते पाञ्चरात्रे च बौद्ध आर्हतके तथा ॥१॥

तस्मात्सर्वासु सञ्ज्ञासु वाच्यैका परमेश्वरी ।
शब्दशास्त्रे तथान्येषु संहिता मुनिभिस्सुरैः ॥२॥ इत्यादि

मन्त्रोद्धारम्प्रवक्ष्यामि गुप्तद्वारेण केशव ।
विशेषस्त्ववगन्तव्यो व्याख्यातृगुरुवक्त्रतः ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यतः क्वचिन्मन्त्रोद्धारभेदात्, क्वचिदासनभेदात्, क्वचित्सम्प्रदायभेदात्, क्वचित्पूजाभेदात्, क्वचिन्मूर्तिभेदात्, क्वचिद्ध्यानभेदाद् बहुप्रकारैषा त्रिपुरा क्वचित् त्रिपुरभैरवी, क्वचित्त्रिपुरभारती, क्वचिन्नित्यत्रिपुरभैरवी, क्वचित्त्रिपुरललिता क्वचिदपरेण नाम्ना क्वचित् त्रिपुरैवोच्यते । सर्वप्रकारेण फलदा सैव भगवती । यदाहुः-

न गुरोः सदृशो दाता न देवः शङ्करोपमः ।
न कौलात्परमो योगी न विद्या त्रिपुरापरा ॥१॥

न पत्न्याः परमं सौख्यं न वेदात्परमो विधिः[१] ।
न बीजात्परमा सृष्टिर्न विद्या त्रिपुरापरा ॥२॥

दर्शनेषु समस्तेषु पाखण्डेषु विशेषतः ।
दिव्यरूपा महादेवी सर्वत्र परमेश्वरी ॥३॥

अथ त्रिपुराया जाप-होम-पूजा-साधन-ध्यान-न्यास-क्रिया-फलादिकं पृथक्पृथक् शास्त्रेभ्यो ज्ञेयम् । यदाहुस्तत्तद्ग्रन्थेषु-

न जापेन विना सिद्धिर्न होमेन विना फलम् ।
न पूजावर्जितं सौख्यं मन्त्रसाधनकर्मणि ॥१॥

न ध्यानेन विना सिद्धिर्न न्यासेन विना जपः ।
न क्रियावर्जितो मोक्षो मन्त्रसाधनकर्मणि ॥२॥

यत्नेन[२] सर्वं गुह्यमेकमुष्ट्या प्रदेयं गुरुभिरिति प्रथमश्लोकार्थः ॥१॥

भाषा—ऐन्द्रस्य-शरासनस्य-इव=वर्षासमय में प्रकट हुए इन्द्रधनुष के समान प्रभाम्=हरित पीत धवल श्याम रक्त आदि विचित्र कान्ति को दधती मध्येललाटम्=ललाट के मध्य भाग में धारण कर रही । और शिरसि=मस्तक में अनुष्णगोः इव=शरत्काल के चन्द्रमा के समान शौक्लीं कान्तिम्=शुक्ल कान्ति को सर्वतः = सर्व दिशाओं में आतन्वती = विस्तार रही और हृदि=हृदयकमल में

१. (न शान्तेः परमं ज्ञानं न शान्तेः परमो भयः । न कौलात् परमो योगी न विद्या त्रिपुरापरा) इत्यधिकं जि० पुस्तके ।

२. यतो न । इति जि० पुस्तके ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहःस्थिता=उष्णांशोः द्युतिः इव=प्रभातकाल के सूर्यमण्डल की कान्ति के समान शोभा को सर्वदा=सर्व काल धारण कर रही, ऐसी एषा=यह अर्थात् ज्ञानीजनों के लिए प्रत्यक्ष स्वरूपवाली और असौ=वह अर्थात् अज्ञजनों के लिए गुप्त स्वरूपवाली वाङ्मयी=वाणीरूप तथा ज्योतिर्मयी:=ज्योतिःस्वरूप त्रिपुरा=श्रीत्रिपुरा नाम देवी त्रिभिः पदैः=इन पूर्वोक्त तीन विशेषणों से या इन तीन मन्त्राक्षरों से नः=हम लोगों के अघं=पाप को या दुःख को सहसा=तत्काल छिन्द्यात्=नष्ट करो ॥१॥

भावार्थः—जो साधक पुरुष अपने ललाट के मध्य भाग में इन्द्रधनुष्य के समान विचित्र वर्णवाले ऐँ बीजाक्षर का और मस्तक में चन्द्रमा की कान्ति के समान उज्ज्वल वर्णवाले क्लीँ बीजाक्षर का और हृदयकमल में प्रातःकालिक सूर्य की कान्ति के समान रक्तवर्णवाले सौँ बीजाक्षर का ध्यान करता है उस साधक पुरुष को श्रीत्रिपुरा[१] देवी के अनुग्रह से धर्म, अर्थ, काम मोक्ष आदि पुरुषार्थ की सिद्धि हो जाती है और समग्र आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं ॥१॥

विशेषार्थः—इस श्लोक में से श्रीत्रिपुरा देवी के बीजाक्षर मन्त्रों का भी उद्धार होता है । जो कि इस स्तोत्र के वीसवें श्लोक में कहा जायेगा । उन मन्त्राक्षरों का उद्धार करने की विधि यह है कि इस श्लोक के पहले ऐन्द्रस्येत्यादि में पहला अक्षर 'ऐँ' बीजाक्षर है । दूसरे पाद शौक्लीम्-इत्यादि में दूसरा अक्षर 'क्लीँ' बीजाक्षर है और तीसरे पाद एषासौ इत्यादि में तीसरा अक्षर 'सौँ' बीजाक्षर है । सब मिलकर ऐँ क्लीँ सौँ यह मूलमन्त्र हुआ । 'हस्थित' इस मूलपाठ से कितनेक पण्डित कहते हैं कि सौ बीजाक्षर को हकारसहित उच्चारण करना जैसे ह्सौ । कौल मुनि के मत में हकार को गगन माना है, गगन नाम अनुस्वार का

१. कोई पुरुष शङ्का करे कि शक्तिरूप देवी का नाम कहीं त्रिपुरभैरवी कहीं त्रिपुरा और कहीं त्रिपुरललिता आदि आते हैं सो यह स्तोत्र कौन सी देवी की महिमा को प्रतिपादन करता है तब उसका प्रत्युत्तर यह है कि, इस स्तोत्र में श्रीत्रिपुरा देवी का ही वर्णन है और मन्त्र, आसन, पूजा, मूर्ति, ध्यान आदि के भेद से उस श्रीत्रिपुरा देवी के ही त्रिपुरभैरवी, त्रिपुरभारती, नित्यत्रिपुरभैरवी, त्रिपुरा आदि नाम भेद है और वही श्रीत्रिपुरा देवी हर किसी मूर्त्ति की उपासना करनेवाले पुरुष को फल देती है । जैसे कि, एक स्थान पर लिखा है कि गुरु समान कोई दानी नहीं है । शङ्कर समान कोई देव नहीं है । कौल मुनि के समान कोई उत्तम योगी नहीं है । त्रिपुरा देवी की मन्त्रविद्या समान कोई विद्या नहीं है । स्त्री के समान कोई हितकारी नहीं है । वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है । बीज (वीर्य) के समान कोई सृष्टिकर्त्ता नहीं है । और त्रिपुरादेवी की मन्त्रविद्या समान कोई विद्या नहीं है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । इसलिये 'हस्थित' ऐसे मूलपाठ से कुछ पण्डित सौ बीजाक्षर को अनुस्वार सहित मानते हैं, जैसे 'सौँ' । और 'सहसापदैस्त्रिभिः' इस मूलपाठ से फिर भी विशेषता यह है कि इन तीनों बीजाक्षरों ऐँ क्लीँ सौँ का सकार हकार के साथ उच्चारण करना चाहिये, जैसे 'स्हैं-स्हक्लीं-स्हौं' । और सर्वतः ऐसे मूलपाठ से 'सरु' ऐसे पद को पृथक् निकाल कर पूर्वोक्त 'स्हक्लीं' बीजाक्षर का विशेषण करने से रकार के साथ भी इसका उच्चारण करना योग्य है । जैसे स्र्हक्लीं—यह कूटाक्षर बड़ा चमत्कारिक और साक्षात् शिवरूप है । अथवा पूर्वोक्त सरु पद को ह्सौँ का विशेषण करने से उस बीजाक्षर को विसर्गों के साथ उच्चारण करना योग्य है जैसे ह्सौः । इत्यादि अनेक बीजाक्षरों के भेद है और इस श्लोक के अनेक अर्थान्तर हैं परन्तु ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से मैंने मुख्यमुख्य ही बताये हैं । त्रिपुरा देवी का जप, होम, पूजा, ध्यान, न्यास, क्रिया आदि समग्र विधि को तथा विशेष बीजाक्षरों के रहस्य विषय को दूसरे शास्त्रों से या अपने गुरु के मुखारविन्द से जान लेना योग्य है । क्योंकि शास्त्रों में कहते हैं कि जप, होम आदि विधि के विना मन्त्रसाधन फलदायक नहीं होता है ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२

त्रिपुरायाः प्रथमबीजान्तरमाह—**येति**

या मात्रा त्रपुषीलततातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्द्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥२॥

व्याख्या—हे भगवति[१] त्रिपुरे ! इत्यामन्त्रणपदमध्याहार्यं सर्वत्र । **त्रिपुषीलततातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्द्धिनी या मात्रा प्रथमे तव वाग्बीजे स्थिता** = ऐँकारे प्रतिष्ठिता, **तां** = मात्रां ते **वयं** = त्वद्भक्ता **मन्महे** । **त्रपुषीलता** = उष्णकालेऽरहट्टघटीजलसिक्तक्षेत्रोत्पन्ना कर्क्कटीवल्ली तस्यास्तनवः = सूक्ष्माः लसन्तः = प्रसरन्तो ये तन्तवो = गुणास्तेषामुत्थितिः = प्रथमारम्भ स्पर्द्धते = अनुकरोति । नवोत्पन्नास्तन्तवो विशिष्य कुटिलाकारा भवन्तीत्यर्थः । ईदृशी ॐ या मात्रा हौँआकाररूपा[२] सैव मात्रा । हे भगवति ! तव **वाग्बीजे** = ऐङ्कारे स्थिता **तां** = मात्रां **वयं मन्महे** अर्द्धमात्रामपि ऐंकारवद्वाग्बीजतयाद्रियामहे इत्यर्थः । इयं **कुण्डलिनी शक्तिः** भगवती **विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा**= विश्वस्य = जगतो जननमुत्पादनं तस्य व्यापारः = कर्म तत्र बद्धोद्यमा = कृत-प्रयासा चतुर्दशभुवनसृष्टिसावधाना त्रिपुरा इति, **इत्थं ज्ञात्वा** = एवं सम्यगवबुध्य **नराः** = मनुष्याः **जननीगर्भे** = मातृकुक्षौ **पुनः अर्भकत्वं** = डिम्भरूपतां **न स्पृशन्ति**

---

१. इत्यादि सम्बोधन पदों का अध्याहार जहाँ आवश्यकता हो वहाँ सब स्थानपर कर लेना चाहिये ।

२. अयं कुण्डलिनीशक्तेराकारः । एतदाकाररूपेत्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

= नानुभवन्ति । ईदृग्रूपवाग्बीजपरमशक्ति ध्यानादपि प्राप्तज्ञानमहानन्दा योगिनो मोक्षपदमवाप्नुवन्ति । न च संसारे दुःखभाण्डागारे भूय उत्पद्यन्त इति द्वितीय-वृत्तार्थः ॥२॥

भाषा—इस श्लोक में श्रीत्रिपुरा देवी के प्रथम बीजाक्षर की विशेषता को कहते हैं । हे देवी ! भगवती ! त्रपुषीलतातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्द्धिनी=उष्णकाल में अरहट्ट की घड़ियों के जल से तृप्त हुई खीरा ककड़ी की बेल के पतले पतले और फैलते हुए आँटेदार तन्तुओं के समान शोभावाली या मात्रा=जो मात्रा तव प्रथमे वाग्बीजे=आप के पहले अर्थात् ऐंकाररूप बीजाक्षर में स्थिता=स्थित है ताम्=उस ऐसे रूपवाली मात्रा को वयम्=हमलोग मन्महे=वाग्बीज का मुख्य अङ्ग मानते हैं । कुण्डलिनी शक्तिः=यह कुण्डलाकार मात्रारूप शक्ति विश्वजनन-व्यापारबद्धोद्यमा =समग्र जगत को रचने वाली है इत्थम्=इस प्रकार ज्ञात्वा=चित्त में जान लेने से नराः=संसारी जन पुनः=फिर जननीगर्भे=माता के उदर में अर्भकत्वम्=बालकपने को न स्पृशन्ति=प्राप्त नहीं होते ॥२॥

भावार्थः—जो कोई पुरुष वाग्बीज ऐंकार में स्थित खीरा ककड़ी की बेल के आँटेदार तन्तुरूप मात्रा को सब जगत की सृष्टिकारक कुण्डलिनी शक्ति मानकर उस का एकाग्र चित्त से ध्यान करते हैं वे पुरुष ज्ञानरूप आनन्द समुद्र में मग्नचित्त होकर अन्त में मोक्षपद को प्राप्त हो जाते हैं, फिर वे इस महादुःखरूप संसार में आकर जन्म, मरण के क्लेशों को नहीं भोगते हैं ॥२॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

३

अज्ञानोच्चारितस्याप्येतस्य बीजस्य प्रभावातिशयमाह-**दृष्ट्वेति** ।

दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं
येनाकूतवशादपीह वरदे ! बिन्दुं विनाप्यक्षरम् ।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि ! तरसा जाते तवानुग्रहे
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्राम्बुजात्[१] ॥३॥

व्याख्या—हे वरदे = मनोऽभिलषितवरदानदक्षे ! **इह** = जगति **सम्भ्रमकारि** = आश्चर्यकारणं **वस्तु** = पदार्थं **सहसा** = अकस्मात् **दृष्ट्वा** = विलोक्य येन केनापि पुरुषेण **आकूतवशादपि** = भयाभिप्रायादपि **बिन्दुं विनाप्यक्षरम्** = अनुस्वारवर्जितमक्षरं **व्याहृतम्** = उच्चारितं **तस्यापि** = 'ऐऐ' इत्युच्चारकस्य पुरुषस्य **ध्रुवमेव** = निश्चितमेव **हे देवि** = भगवति ! **तरसा** = बलेन विद्यापाठं विनापि **तवानुग्रहे** = त्वत्प्रसादे **जाते** सति ध्यातुः **वक्राम्बुजात्** = मुखकमलात् **सूक्तिसुधारसद्रवमुचः** = अमृतरसनिर्यासरूपा वाचो **निर्यान्ति** = निःसरन्ति । सार्थकत्वाद्वचनानाममृतोपमानत्वम् । यद्यपि रसद्रवयोरेकार्थता तथाप्यत्र विशेषो-अमृतं हि देवानां भोज्यं रसरूपमेव भवति तस्यापि द्रवः सारोद्धारो निर्यास इत्यर्थः । अयमभिप्रायः-प्राणी यदि किमपि अपूर्वपदार्थावलोकेऽपि सम्भ्रान्तचेताः ऐ इत्यक्षरमुच्चारयाति । एतावद्बीजाक्षरोच्चारण-सन्तुष्ट-भगवती-प्रसादादविरल-विगलदमृत-लहरी-परीपाक-पैशलवाणी-विलासाः प्रसरन्तीति तृतीयवृत्तार्थः ॥३॥

---

१. वक्रोदरात्, इत्यपि पाठः, तस्यार्थस्तु मुखमध्यात्-इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा—अज्ञान से भी उच्चारण किये गए ऐं बीजाक्षर के प्रभाव की अधिकता बताते है । हे वरदे=मनोवाञ्छित वर देनेवाली श्रीभगवती ! इह=इस जगत में सहसा=अकस्मात् ही सम्भ्रमकारि वस्तु=भय या आश्चर्य करनेवाली किसी वस्तु को दृष्ट्वा=देखकर येन=जिस पुरुष ने आकूतवशात्=भय या आश्चर्य के अभिप्राय से बिन्दुं विना अपि=अनुस्वार विना भी अक्षरम्=पूर्वोक्त बीजाक्षर का व्याहृतम् =उच्चारण किया है अर्थात् 'ऐ ऐ' ऐसा उच्चारण किया है तस्य अपि=उस 'ऐ ऐ' उच्चारण करनेवाले पुरुष को भी हे देवि-भगवती ! तरसा =विद्या का अभ्यास किये विना ही तव-अनुग्रहे-जाते=आप की कृपा प्राप्त हो जाती है । और वक्त्राम्बुजात्=उस पुरुष के मुखारविन्द में से ध्रुवम्=निश्चय ही सूक्तिसुधारसद्रवमुचः=सुभाषितमय अमृत के रस को झरानेवाली वाचः वाणी निर्यान्ति=निकलती हैं ।

भावार्थः—जो कोई पुरुष भयकारी या आश्चर्यकारी किसी वस्तु को देखकर हँसी ठट्ठे आदि के अभिप्राय से भी यदि 'ऐ ऐ' ऐसे विना अनुस्वार वाग्बीजाक्षर का उच्चारण करता है, तथापि इतना ही उच्चारण करने से प्रसन्न हुई श्रीत्रिपुरा देवी के अनुग्रह से उस पुरुष के मुखारविन्द में से सुन्दर और अमृतसमान अतिमधुर वाणी निकलती है अर्थात् उस वाग्बीजाक्षर के उच्चारण करने के प्रभाव से वह पुरुष अत्यन्त बुद्धिमान् और कविजनों में शिरोमणि हो जाता है ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयबीजाक्षरेऽप्यंशगतं बीजान्तरमाह-**यदिति** ।

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद् बुधश्चेद् भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्त्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम् ॥४॥

व्याख्या—यदिति । हे **नित्ये** = सकलकालकलाव्यापिशाश्वतरूपे भगवति ! **यत्तव** = भगवत्याः **अपरं** = द्वितीयं **मन्त्राक्षरं कामराजं** = कामराजनामकं क्लींकाररूपं तदपि निष्कलं शुद्धकोटिप्राप्तं **तत्** = बीजं **सारस्वत-मिति भुवि** = पृथिव्यां **कश्चिदेव विरलो बुधः** = विचक्षणो **अवैति** = वेत्ति जानाति विचारयति ।

प्रसिद्धमपि बीजं विरलो जानातीति कथने कवेरिदमाकूतम् । निष्कलमिति निर्गतककार-लकाराक्षरम् तेन ई इति प्रसिद्धम्, अपरमिति च अपगतरेफमाम्नायान्तरे ज्ञेयम् । ईदृशञ्चैव गूढाक्षरं विरल एव वेत्ति । यतः

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता शतसहस्रेषु ज्ञाता भवति वा न वा ॥१॥ इति वचनात्

अस्यैवाक्षरस्य व्यवस्थापकमाह । **यत्** = मन्त्राक्षरं **प्रतिपर्व** अमावास्यायां पूर्णिमायां वा **सत्यतपसो** = नाम ब्रह्मर्षेः **आख्यानं** = दृष्टान्तं **कीर्त्तयन्तो** = सभा बन्धेन व्याख्यानयन्तः **द्विजाः** = ब्राह्मणाः **प्रारम्भे** = कथाकथनप्रारम्भे **प्रणवा-स्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति** = प्रणवः ॐकारस्तस्यास्पदं स्थानं तत्र प्रणयः सम्बन्धः सोऽस्यास्तीति मत्वर्थीयप्रत्ययानन्तं पदं तद्भावस्तत्ता । यदेवाक्षरं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्यतपसो मुनेः पर्वाध्यायं श्रावयन्तो विप्राः आदौ पठन्ति तदेवाक्षरमित्यर्थः ।

ॐकारः सर्ववैदिकपाठेषु मङ्गलार्थतयाभीष्ट एव । यदाहुः-

ॐकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्त्वा विनिष्क्रान्तौ तेनोभौ मङ्गलाविमौ ॥१॥

अतो यत्र पाठे ईकारोऽप्यस्ति तत्पाठश्चायम् = 'ई' इति ।

एतदक्षरोच्चारणे च तस्य महर्षेरमुं हेतुमाहुः प्राचीना मुनयः ।

इह हिमवतः उत्तरेषु पादेषु पुष्पभद्रा नाम नदी तस्यास्तीरे पुष्पभद्रो नाम वटस्तत्र सत्यतपा नाम ऋषिस्तपोऽतप्यत । तस्य किल महर्षेः कानने निराहारं तपः समाचरतो निष्ठुरतर-शर-प्रहार-भर-जर्जरीकृत-कलेवरं चीत्कार-बधिरित-दिगन्तरमेकं वराहमालोक्य परमकारुण्यात्तत्कालसङ्क्रान्तयेव तत्पीडया मुखकमलात् ईइत्यक्षरं विनिर्गतमनन्तरं तत्पृष्ठत एवागतेनाधिज्यकार्मुकेण व्याधेन पृष्टम्-'भगवन् ! मदीय नाशचहतः शूकरः केन वर्त्मना गतः ? पीड्यते बुभुक्षया मत्कुटुम्बं, तत्तं निवेदय दयानिधे !' न दृष्ट इति कथनेऽसत्यभाषणं सत्यकथने च परपीडा । तदेवं विरुद्धमापतितमिति चिन्ताशतव्याकुलितस्य परलोकभीरोर्मुनेः ईकाररूपसारस्वत-बीजोच्चारणमात्रसन्तुष्ट भगवती सरस्वती मुखेऽवतीर्य सत्यहितं वचनमुच्चचार तद्यथा-

या पश्यति न सा ब्रूते, या ब्रूते सा न पश्यति ।
अहो व्याध स्वकार्यार्थिन् ! किं पृच्छसि मुहुर्मुहुः ॥१॥

एत्सम्प्रदाया ब्राह्मणा अद्यपि पर्वाध्यायादौ सारस्वतं परमम् 'ई' इत्यक्षरमुच्चारयन्ति सानुनासिकमिति तुर्यवृत्तार्थः ॥४॥

भाषा—हे नित्ये = सर्वकाल में व्यापक स्वरूपवाली श्रीभगवती यत् = जो तव= आप का अपरम् = दूसरा कामराजम् = कामरानामक मन्त्राक्षरम् = मन्त्राक्षर है अर्थात् क्लीँ ऐसा मन्त्राक्षर है, तत् = वह बीजमन्त्राक्षजर निष्कलम् = सर्वोत्तम शुद्धता को प्राप्त हुआ है। और सारस्वतम् = सरस्वती के साथ सम्बन्धवाला है। इति= इस प्रकार के रहस्य को भुवि = पृथ्वीपर कश्चित् = कोई विरलः = थोड़े ही बुधः=सुबुद्धि पुरुष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवैति = जानते हैं। प्रतिपर्व = प्रत्येकपर्व के दिन सत्यतपसः = सत्यतपा नामक मुनि के आख्यानम् = आख्यान को कीर्त्तयन्तः = कीर्त्तन करते हुए द्विजाः = ब्राह्मण लोग यत् = इस कामबीजाक्षर को प्रणवास्पदप्रणयिताम् = ओं[1]कार के सदृश नीत्वा = मानकर प्रारम्भे = प्रत्येक कथा के प्रारम्भ में उच्चरन्ति = उच्चारण करते हैं ॥४॥

गूढार्थः—सर्वत्र प्रसिद्ध होने पर भी इस कामबीजाक्षर को विरले पुरुष ही जानते हैं। इस कहने से कविका यह भावार्थ है कि 'निष्कलम्' ऐसे मूलस्थित पाठ से क्लीँ बीजाक्षर को ककार-लकार करके रहित उच्चारण करना योग्य है जैसे 'ई'। और कितनेक आचार्य क्लीँ बीज को रकार के साथ मानते हैं अर्थात् क्ल्रीं ऐसा मानते हैं उनके मत में भी अपरः ऐसे मूलस्थ विशेषण से रकार रहित करने से पूर्ववत् ई ऐसा रह जायगा सो यह बीजाक्षर सरस्वती का है। इस अतिगूढ़ बीजाक्षर को विरले ही पुरुष जानते हैं। जैसे एक स्थान पर लिखा है कि 'सैकड़ों मनुष्यों में कोई शूरवीर होता है, हजारों मनुष्यों में कोई बुद्धिमान होता है, लाखों मनुष्यों में कोई शास्त्रज्ञ होता है। परन्तु शास्त्रों के रहस्य अर्थों को तो कोई विरले ही पुरुष जानते हैं' ॥४॥

---

१. ओंकार सब वैदिक शास्त्रों मे माङ्गलिक है। जैसे एक स्थान पर लिखा है कि, ओंकार शब्द और अथशब्द ये दोनों ब्रह्माजी के कण्ठ को भेदन कर के उत्पन्न हुए थे इसलिये दोनो शब्द माङ्गलिक है। **'ईं'** इस शब्द का उच्चारण करने में प्राचीन मुनिजन इस इतिहास को कहते हैं कि हिमाचल पर्वत के उत्तर शिखर पर एक पुष्पभद्रा नाम नदी थी। उसके तीर पर पुष्पभद्र नाम का एक वट था। वहाँ सत्यतपा नामक एक मुनि निराहार घोर तपस्या कर रहा था। उस समय एक सूअर आया, जो कि व्याध के घोरबाण से जर्जर-शरीर था और चित्कार से दिशाओं को बधिर कर रहा था। उस को देखकर उस मुनि ने उसकी पीडा से दुःखित होकर परम अनुग्रह से 'ई' ऐसा शब्द उच्चारण किया। तदनन्तर उस सूअर के पीछे अपने धनुष को चढाये हुए एक व्याध ने आ कर पूछा "हे मुनि ! मेरे बाण से घायल हुआ सूअर कौन से मार्ग से गया, कृपा कर के बताइये। क्योंकि मेरा परिवार भूखा मर रहा है"। इन वचनों को सुनकर सत्यतपा मुनि के मन में बहुत चिन्ता उत्पन्न हो गई। क्योंकि-जो उस व्याध को "मैंने सूअर को नहीं देखा" ऐसा यह कह दें तो असत्य भाषण हो जाये। और "मैंने सूअर को देखा यह कह दे" तो जीवहिंसा हो जाय, यह कैसा संकट आ पड़ा है।' इस प्रकार मुनि को सोचते हुए देखकर **'ईं'** ऐसे बीजाक्षर का उच्चारण करने से परम प्रसन्न हुई श्रीसरस्वती देवी ने उस मुनि के मुख में आकर सत्य, और हितकारी वचन उच्चारण करवाया कि, "हे व्याध ! जिसने सूअर को देखा है वह तो कहती नहीं है जो कहती है वह देखती नहीं है। हे व्याध ! तुम तो स्वकार्यार्थी हो इस लिये बारबार क्यों पूछते हो ? चले जाओ'। इस सम्प्रदायवाले ब्राह्मण लोग अभी तक पर्वाध्याय की आदि में अनुनासिक सहित ईं ऐसे बीजाक्षर का उच्चारण करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयबीजेऽप्यशेषाम्नायानुप्रवेशमाह-यदिति ।

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधै-
स्तार्त्तीयीकमहं नमामि मनसा तद्बीजमिन्दुप्रभम् ।
अस्त्वौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये
गौःशब्दो गिरि वर्त्तते स नियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

व्याख्या—तार्त्तीयीकं = तृतीयम् **इन्दुप्रभं** = शशाङ्कधवलं **तत्** = पूर्वनिर्दिष्टं **बीजं** = ह्सौं इतिरूपं बीजाक्षरम् **अहं नमामि । यत्** बीजं **वाचांप्रवृत्तिकरणे** = वचनपाटवकरणे **बुधैः** = सचेतनैः **सद्यो दृष्टप्रभावं** = तत्क्षणालोकितोल्लसत्प्रत्ययम् । एकाक्यपि त्रैपुरं तृतीयं बीजं चन्द्रशुभ्रं ध्यातं सत् परमसारस्वतमित्यर्थः । यदि वा अहमिति न विद्यते हकारो यत्र तदहं हकाररहितम् । 'सौं' । एतदपि शारदं बीजं ज्ञेयम् । तदुक्तम्-

जीवं दक्षिणकर्णेन वाचा चैव समन्वितम् ।
एतत्सारस्वतं बीजं सद्योवचनकारकम् ॥१॥

जीवं सकारः । दक्षिणकर्णः औकारः । वाचा विसर्गः-इत्यादिसञ्ज्ञाः कौलमातृकातो ज्ञातव्याः । उत्तरार्द्धेन सप्रभावं त्रैपुरं बीजान्तरमाह । **और्वोऽपि** वडवानलोऽपि **सरस्वतीं** नाम नदीम् **अनुगतो** = मिलितो **जाड्याम्बुविच्छित्तये** = जाड्यजलसंशोषणाय **अस्तु** = स्यात् । तत्त्वं तु **अस्त्वौरिति** अस्-तु-औः इति पदत्रयम् । न विद्यते सकारो यत्र तत् अस्, सकारवर्जितम् । तुः पुनरर्थे । तेन औः इति केवलं सिद्धम् । एतदपि बीजान्तरं ज्ञेयम् । ततश्च **वो** = युष्माकं **सरस्वतीमनुगतः** = सारस्वतबीजतां प्राप्तः औरिति **जाड्याम्बुविच्छित्तये अस्तु**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवतु इति व्याख्येयम् । अयमभिप्रायः-यथा किल सरस्वतीनाममात्रसाम्यान्नदी-सम्पर्काद्वडवाग्निरपि जाड्यं छिनत्ति तथेदमप्यक्षरं सारस्वतबीजत्वादज्ञानमुद्रापहारकम्-इति युक्तो न्यायः । एतस्यावस्थापकमाह-गौरिति । **गौः शब्दः गिरि** वाण्यां **वर्त्तते**

स्वर्गे दिशि पशौ रश्मौ वज्रे भूम्नि विषे गिरि ।
विनायके जले नेत्रे गौ शब्दः परिकीर्त्तितः ॥

इत्यनेकार्थवचनात् । स = गौः शब्दो **योगं विना** = ध्यानं (विना) **नियतं** = निश्चयेन **सिद्धिदः** = सारस्वतसिद्धिप्रदः । मम मतं चेदमर्थम् । **यो** = गौः शब्दः **गं** गकारं **विना** सिद्धिदः । तथा (च) औः इत्यवशिष्यते । इदम् औः इति बीजाक्षरं **योगं** = होमध्यानकुसुमजापक्रियां विनापि फलतीत्या-वृत्त्या व्याख्यातं ज्ञेयम् । अस्मिन् पद्यद्वयेऽपि एकमेव बीजाक्षरं बीजपदमुक्तमिति न पुनरुक्तमाशङ्क्यम् । यतोऽस्त्वौरिति सविसर्गं सानुनासिकञ्च बीजं (सौँ) इतरत् (सौः) सविसर्गमित्ययं विशेष इति पञ्चमवृत्तार्थः ॥५॥

भाषा—तीसरे सौ बीजाक्षर में भी सब शास्त्रों के आम्नाय का प्रवेश होता है यह बात कहते हैं । यत् = जिस बीजाक्षर का बुधैः = विवेकी जनों ने सद्यः = तत्काल वाचांप्रवृत्तिकरणे = बुद्धि की प्रवृत्ति करने के लिये दृष्ट-प्रभावम् = प्रभाव देख लिया है । तत् = उस इन्दुप्रभम् = चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कान्तिवाले तार्त्तीयकम् = तीसरे बीजम् = सौ ऐसे बीजाक्षर को अहम् = मैं मनसा = चित्त से नमामि = नमस्कार करता हूँ । और जैसे सरस्वतीम् = अनुगतः सरस्वती नाम नदी के सम्बन्ध से और्वः = समुद्रस्थ वडवानल जाड्याम्बुविच्छित्तये = समुद्र के जल को शोषण करता है । वैसे यह सौ-बीजाक्षर भी सरस्वती से सम्बन्धित होने के कारण मूर्खतारूप जल को सुखाने के लिये अस्तु = समर्थ हो । और गौः शब्दः = 'गौः' ऐसा शब्द गिरि वर्त्तते = शास्त्रो में सरस्वती देवी का वाचक है इस वास्ते सः = वह शब्द योगं विना = होम, ध्यान, न्यास आदि शास्त्रोक्त विधि के विना ही नियतम् = निश्चयरूप से सिद्धिदः = मनोवाञ्छित सिद्धियों को देनेवाला है । अर्थात् यह सौ (औ) बीजाक्षर विधि के साधन करने से सिद्धिदायक हो इस में तो कहना ही क्या है । परन्तु विधि विना भी इस बीजाक्षर की साधना करना सिद्धिदायक है ॥५॥

विशेषार्थः—इस श्लोक के उत्तरार्द्ध से सौ-बीजाक्षर में किंचित् भेद भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध होता है । अस् औः तु सौ बीजाक्षर के सकार के छोड़कर शेष जो औ ऐसा अक्षर रहता है वह सरस्वतीम् अनुगतः = सरस्वती का बीजाक्षर होने से वः = आप लोगों के अर्थात् साधक पुरुषों के मूर्खतारूप जल को सुखा देता है । अब इस औ बीजाक्षर का सरस्वती से सम्बन्ध होने में प्रमाण कहते है यः = जो गौः शब्दः = गौः ऐसा शब्द गिरि वर्त्तते = शास्त्रों में सरस्वती का वाचक है । इस वास्ते सः वह गं-विना = गकार विना ही सिद्धिदः = सिद्धियों को देनेवाला है अर्थात् केवल औ ऐसा बीजाक्षर सरस्वती से सम्बन्धित होने के कारण साधक पुरुषों को सिद्धि देनेवाला है ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६

साम्नायसङ्ग्रहमाह-एकैकमिति ।

एकैकं तव देवि बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफलीकरोति तरसा तं तं समस्तं नृणाम् ॥६॥

व्याख्या—हे **देवि** = भगवति ! **एकैकम्** = एकमेकम् **अनघं** = निर्दूषणं **तव बीजं** = मन्त्राक्षरं **यं यं काम्म्** = अभीष्टार्थम् **अपेक्ष्य** आश्रित्य **येन केनापि विधिना चिन्तितं** = स्मृतं जप्तं वा पौनःपुन्येन चिन्तितं सदिदं बीजं **नृणां** = ध्यातृपुरुषाणां **तं तं समस्तं** मनोरथं **तरसा** = वेगेन **सफली-करोति** = पूरयति । बीजप्रकारबाहुल्यविशेषणान्याह-किं विशिष्टं बीजं ? **सव्यञ्जनाव्यञ्जनं** = सह व्यञ्जनेन = वर्णेन वर्तते सव्यञ्जनम्, न विद्यते व्यञ्जनं यत्र तदव्यञ्जनम्, केवलस्वरमयं । ततः समाहारद्वन्दः । तत्र सव्यञ्जनं मूलाम्नायरूपम् । अव्यञ्जनं च ऐ, ई, औ इति बीजपदानि, एतान्यपि रहस्यरूपाणि ज्ञेयानि । यदाह त्रिपुरसारे-

शिवाष्टमं केवलमादिबीजं भगस्य पूर्वाष्टमबीजमन्यत् ।
परं शिरोऽन्तःकथिता त्रिवर्णा सङ्केतविद्या गुरुवक्त्रगम्या ॥१॥ इति

तथा **कूटस्थम्**-अनेकसंयोगाक्षरबीजं यथा-ह्सैं-ह्स्क्लीँ ह्सौँ महात्रिपुर-भैरवीं नमः । पट्टे कुङ्कुमगोरोचनाचन्दनकर्पूरैर्मन्त्रं लिखित्वा बद्धस्य नाम उपरि बन्धकस्य त्वधो दत्त्वा रक्तपुष्पैरष्टदिनपर्यन्तमष्टोत्तरशत १०८ जपाद् बन्दीमोक्षः । यदि वा भूर्जपत्रे लिखित्वा दिनत्रयं रक्तपुष्पैरष्टोत्तरशतं १०८ जपं कृत्वा बद्धस्य वस्त्रांचले बन्धयेदवश्यं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष इति । **यदि वा पृथक् एकैकं बीजं** = न च मिलितं । बीजत्रयमेव सारस्वतं किन्त्वेकाक्षरमतिरहस्यम् । यदाहुः श्रीपूज्यपादशिष्याः-

[1]कान्तादिभूतपदगैकगतार्द्धचन्द्रदन्तान्तपूर्वजलधिस्थितिवर्णयुक्तम् ।
एतज्जपन्नरवरो भुवि वाग्भवाख्यं वाचां सुधारसमुचां लभते स सिद्धिम् ॥१॥

अन्यच्च **क्रमगतं** = क्रमेण परिपाट्या लोकप्रसिद्ध्या शिवशक्ति-संयोगरूपया स्थितं यथा-ह्सैं-ह्स्क्लीँ ह्स्सौँ इति । यद्वा व्युत्क्रमात् वैपरीत्येन विपरीतरताभियोगेन स्थितं शक्त्याक्रान्तं शिवबीजमित्यर्थः । यथा स्ह्रैं-स्ह्क्लीँ स्ह्सौँ इति । यदाहु-श्रीजिनप्रभसूरिपादा रहस्ये पुंसो वश्यार्थे शिवाक्रान्तं शक्तिबीजं रक्तध्यानेन ध्यायेत्, स्त्रियास्तु वश्यार्थं शक्त्याक्रान्तं शिवबीजं ध्यायेदिति ।

त्रिपुरसारेऽप्याह-

शिवशक्तिबीजमत एव शम्भुना
निहितं द्वयोरुपरि पूर्वबीजयोः ।
अकुलं च परोपरि च मध्यमाधरे
दहनं ततःप्रभृति सोर्जिता भवेत् ॥

भैरवीयमुदिता कुलपूर्वा
देशिकैर्यदि भवेत् कुलपूर्वा ।
सैव शीघ्रफलदा भुवि विद्या
पश्यते पशुजनेष्वपि गोप्या ॥

किञ्च क्रमव्युत्क्रमौ, क्रमो यथा ऐँ क्लीँ सौँ, व्युत्क्रमो यथा ऐँ सौँ क्लीँ क्लीँ ऐँ सौँ । क्लीँ सौँ ऐँ । सौँ ऐँ क्लीँ । सौँ क्लीँ ऐँ । इत्यमुना प्रकारेण क्रमव्युत्क्रमयोः प्रकारान्तरमुच्यते । यथा क्रमो वाग्बीज-कामबीज-प्रेतबीजक्रमेण, व्युत्क्रमस्तु वाक्प्रेतकामबीजक्रमेण वा । प्रेतवाक्कामबीजक्रमेण वा । प्रेतकाम-वाग्बीजक्रमेण वा । कामवाक्प्रेतबीजक्रमेण वा । कामप्रेतवाग्बीजक्रमेण वेति । यदुक्तं पूज्यैः-

---

१. एतच्छ्लोकाग्रे "कान्तान्तं कुलपूर्वपञ्चमयुतं नेत्रान्तदण्डान्वितं, कामाख्यं गदितं जपान्म-तुरयं(?) साक्षाज्जगत्क्षोभकृत् । दन्तान्तेन युतं तु दण्डिसकलसंक्षोभणाख्यं कुलं सिद्ध्यत्यस्य गुणाष्टकं खचरतासिद्धिश्च नित्यं जपात् ॥१॥" इत्यपि केषुचित्कोशेषु पाठो दृश्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आद्यं बीजं मध्यमे मध्यमादावन्त्यं चादौ योजयित्वा जपेद्यः ।
त्रैलोक्यान्तःपातिनो भूतसङ्घा वश्यास्तस्यैश्वर्यभाजो भवेयुः ॥१॥

आद्यं कृत्वा चावसानेऽन्त्यबीजं मध्ये मध्यं चादिमे साधकेन्द्रः ।
सद्यः कुर्याद्यो जपं पापमुक्तो जीवन्मुक्तः सोऽश्नुते दिव्यसिद्धिम् ॥२॥

इत्यादि सर्वबीजलभ्यविशेषफलानि तत्तद्ग्रन्थेभ्यो ज्ञेयानि, अत एवोक्तम्- **यं यं कामं** = वश्याकृष्टि-पौष्टिक-स्तम्भन-मोहन-वशीकरण-मारणोच्चाटन-शान्त्यादिकं ध्याताभिप्रैति, एषां बीजानां प्रभावात् सर्वं सफलीभवतीति षष्ठ-वृत्तार्थः ॥६॥

भाषा—हे देवि श्रीभगवती ! यं यं कामम् = अपेक्ष्य = जिस जिस कामना की अपेक्षा से अनघम् = दूषणों से रहित एकैकम् = एक एक तव-बीजम् = आपके पूर्वोक्त बीजाक्षर को येन केनापि विधिना = कोई भी विधि से चिन्तितम् = स्मरण किया है या जप्तम् = जपा है तो नृणाम् = उन मनुष्यों की तम्-तम् समस्तम् = उस उस समग्र कामनाओं को तरसा = तत्काल आप सफलीकरोति = सफल करती हो, चाहे साधक पुरुष उन बीजाक्षरों को सव्यञ्जनाव्यञ्जनम् = व्यञ्जनों के साथे जपे, जैसे ऐँ क्लीँ सौँ । या व्यञ्जनों करके रहित जपे, जैसे ऐ, ई, औ और चाहे उन बीजाक्षरों को कूटस्थम् = बहुत अक्षरों से मिले हुए जपे जैसे ह्सौँ ह्स्क्लीँ ह्स्सौँ यदि वा अथवा पृथक् उन बीजाक्षरों को अलग अलग जपे जैसे ऐँ क्लीँ सौँ । या ह्सैं-ह्स्क्लीं-ह्स्सौँ । यद्वा = अथवा व्युत्क्रमात् स्थितम् = विपरीत रीति से स्थित हुए उन बीजाक्षरों का जाप करे । जैसे स्हैं-स्ह्क्लीँ स्सौँ । या ऐँ क्लीँ सौँ । वा क्लीँ ऐँ सौँ । वा क्लीँ सौँ ऐँ । या सौँ ऐँ क्लीँ । या सौँ क्लीँ ऐँ इत्यादि ॥६॥

भावार्थः—इन पूर्वोक्त ऐँ क्लीँ सौँ बीजाक्षरों को कोई भी रीति से जपनेवाला साधक मनोवाञ्छित सिद्धियों को प्राप्त हो जाता है । और ह्सैं-ह्स्क्लीँ ह्स्सौँ-महात्रिपुरभैरवीं नमः । यह श्रीभगवती का चिन्तामणि नाम बड़ा चमत्कारिक मन्त्र है । इन मन्त्र का शास्त्रोक्त विधि से साधन करने से साधक पुरुष को कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहेती है ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७

अथ प्रस्तुतसारस्वतसिद्ध्यर्थं ध्येयविभागमाह-वाम इति ।

वामे पुस्तक-धारिणीमभयदां साक्षस्त्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम् ।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनीं
ये त्वामम्ब न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥७॥

व्याख्या—वामे करे **पुस्तकधारिणीं** द्वितीये च वामकरे **अभयदां** = सर्वजीवाभयप्रदानदक्षां । तथा **दक्षिणे** पाणौ **साक्षस्त्रजम्** = अक्षस्त्रजा जपमालया सह वर्त्तते सा तथोक्ता । द्वितीये दक्षिणे करे **वरदानपेशल-करां** = 'कविर्भव वाग्मी भव लक्ष्मीवान् भवे'इत्यादि-वरदानदुर्ललितां, केभ्यः ? **भक्तेभ्यः** = निजसेवकेभ्यः, **कर्पूरकुन्दोज्ज्वलां** = घनसारकुन्दपुष्पोज्ज्वलां **त्वां अम्ब** = हे मातः ! ये पुरुषाः **मनसा** = चित्तशुद्ध्या **न शीलयन्ति** = नाराधयन्ति **तेषां कवित्वं कुतः** त्वत्प्रसादापेक्षिणी कवित्वशक्तिरिति । पुनस्तामेव विशेषयन्नाह-**उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयन-स्निग्धप्रभालोकिनीम्** इति । उज्जृम्भं विकसितं यदम्बुजं कमलं तस्य पत्रं पर्णं तद्वत् कान्ते शुभ्रत्वविशालत्वगुणवर्ण्ये ये नयने = नेत्रे तयोः स्निग्धा विशेषदीप्ता या प्रभा कान्तिस्तया लोकत इत्येवंशीला ताम् । प्रसन्नदृष्टिता ह्यासन्नेष्टदानप्रसादाभिमुखीभावलिङ्गम् । यदुक्तं मागधी-भाषायाम्-

रुद्दस्स खरा दिट्ठी, उप्पलधवला पसन्नचित्तस्स ।
कुवियस्स उ मिलायइ, गंतुमणस्सूसिया होइ ॥१॥

इति चतुर्भुजत्वाद् भगवत्याः पुस्तकाभयदानाक्षमालावरदकरत्वं युक्तम्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवम्भूता भगवती कवित्वसिद्धये ध्यातव्येति सप्तमवृत्तार्थः ॥७॥

भाषा—अब अनुक्रमागत सरस्वती के बीजाक्षर की सिद्धि के लिये तदुपयोगिनी श्रीभगवती की मूर्त्ति का ध्यान वर्णन करते हैं । वामे = एक बाँयें हाथ में पुस्तकधारिणीम् = पुस्तक को धारण करती हुई और दूसरे बाँयें हाथ से अभयदाम् = सर्वजनों को अभयदान देती हुई । दक्षिणे = एक दहिने हाथ में साक्षस्त्रजम् = अक्षमाला को धारण करती हुई और दूसरे दहिने हाथ से भक्तेभ्यः = वरदानपेशलकराम् अपने भक्तजनों को वरदान देती हुई । कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम् = कपूर तथा कुन्दपुष्प के समान गौर वर्णवाली । उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्त-नयन स्निग्धप्रभालोकिनीम् = विकसित कमल के पत्तों के समान मनोहर सानुग्रह दृष्टि से अपने भक्तों को देखती ऐसी त्वाम् = आप की मूर्ति को हे अम्ब = माता श्रीभगवती ! ये = जो पुरुष मनसा चित्त की शुद्धि से न शीलयन्ति = नहीं भजते हैं । तेषाम् = उन पुरुषों को कवित्वम् = पण्डिताई कुतः कहाँ से हो ? अर्थात् कदापि नहीं हो ॥७॥

भावार्थः—कवित्व शक्ति की सिद्धि के लिये साधक पुरुष अक्षमाला और पुस्तक को धारण करती हुई तथा भक्तजनों को वरदान और सर्वजनों को अभयदान देती हुई उज्ज्वल वर्णवाली तथा विकसित कमल के पत्र समान मनोहर नेत्रोंवाली चतुर्भुजा श्रीसरस्वती देवी की मूर्ति का ध्यान करे । और पूर्वोक्त सरस्वती के बीजाक्षर मन्त्र का जाप करे ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८

निरङ्कुशवक्तृत्वशक्तये विशेषोपदेशमाह-य **इति** ।

ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्तं विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजा-
त्तेषां भारति भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत् ॥८॥

व्याख्या—**हे भारति ! पाण्डुर-पुण्डरीक-पटल-स्पष्टाभिराम-प्रभाम्** श्वेतकमलराशिदीप्तमनोज्ञकान्तिम् । **अमृतद्रवैरिव** = सुधारसैरिव **शिरः** = मस्तकं सिञ्चन्तीम् । **मूर्ध्नि स्थितां** = मस्तकोपरिच्छत्रामिव स्थितां त्वाम् **ये** = पुरुषाः **ध्यायन्ति** = स्मरन्ति **तेषां वक्त्राम्बुजात्**= मुखकमलात् **अश्रान्तं** = निरन्तरं **भारती** = वाणी **निर्याति** = **निस्सरति** । किंरूपा ? **विकटस्फुटाक्षरपदा** = विकटान्युदाराणि स्फुटानि प्रकटान्यक्षराणि येष्वेवंभूतानि पदानि वाक्यरचना यस्यां सा तथोक्ता । ईदृशी सालङ्कारा सुललितविदग्ध-स्पृहणीया गीरुल्लसति । कथमित्याह-**सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत्** = सुरसरित् गङ्गा तस्याः कल्लोलाः नीरसम्भारेल्लासिन्यो लहर्यस्तद्वल्लोलाश्चञ्चला ऊर्मयः सावर्त्तपयःप्रवाहरूपास्तद्वत् । भीमकान्तगुणवत्त्वात् पुरुषस्य केचित्तर्कादिवचनोपन्यासाः कल्लोलैरुपमीयन्ते । शान्तधर्मशास्त्रोपदेशाश्चोर्मिभिरित्येकार्थपदद्वयोपादानम् । सततक्षरदमृतबिन्दुशतसहस्रात्[१] स्वात्मध्यानात् परमा कवित्ववक्तृत्वशक्तिरिति पूर्वकाव्याद्विशेषः । वक्त्राम्बुजादित्यत्र जातिव्यपेक्षयैकवचनमित्यष्टमवृत्तार्थः ॥८॥

---

१. शतस्नातस्वात्मध्यानादिति जि० पुस्तके ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा—अत्युत्कट वक्त्वृकला की सिद्धि के लिये विशेष ध्यान का उपदेश कहते हैं । हे भारति = श्रीसरस्वतीरूप भगवती ! पाण्डुरपुण्डरीकपटल-स्पष्टाभिरामप्रभाम् = श्वेत कमलों के समूह के समान देदीप्यमान सुन्दर कान्तिवाली और शिरः = साधक पुरुष के मस्तक को अमृतद्रवैः इव अमृतरस से प्रकाश से सिञ्चन्तीम् = सींचती हुई ऐसी मूर्ध्नि स्थिताम् = छत्र के भाँति मस्तक पर विराजमान त्वाम् = आप की मूर्ति को ये = जो पुरुष ध्यायन्ति = स्मरण करते हैं । तेषाम् = उन पुरुषो के वक्त्राम्बुजात् = मुखारविन्द से अश्रान्तम् = निरन्तर सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत् = श्रीगङ्गा नदी की अतिप्रचण्ड तथा अति चञ्चल तरङ्गों के समान विकटस्फुटाक्षरपदा = कठोर तथा अतिगूढ़ अर्थो से मिली हुई वाणी = छन्दोबद्ध संस्कृतवाणी निर्याति = निकलती है अर्थात् इस श्लोक में कहे हुए श्रीसरस्वती के स्वरूप का ध्यान करने से और पूर्वोक्त सरस्वती के बीजाक्षरमन्त्र का जाप करने से साधक पुरुष लोकोत्तर तथा विचित्र संस्कृत काव्यों की रचना में समर्थ हो जाता है ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९

धर्मपुरुषार्थमुक्त्वा कामपुरुषार्थसिद्ध्यर्थं ध्यानविशेषमाह-**य इति** ।

ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमा-
मुर्वीञ्चापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव ।
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर-
क्लान्तास्त्रस्तकुरङ्गशावकदृशो वश्या भवन्ति स्त्रियः ॥९॥

व्याख्या—हे भगवति ! **त्वत्तेजसा** = तव शरीरकान्त्या **ये** = ध्यातारः **क्षणम् अपि** = क्षणमात्रमपि **अनन्यमनसः** = एकाग्रचित्ताः सन्तः **इमां द्यां = सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां पश्यन्ति** = इदमाकाशं सिन्दूररेणुपटलव्याप्तं ध्यानभङ्ग्या प्रत्यक्षमिव विलोकयन्ति । **उर्वीञ्च** = पृथ्वीं च **विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव** = विगलदलक्तकबिन्दुमेदुरमिव पश्यन्ति । अनन्यमनस इति पदमुभयत्रापि डमरुक-मणिन्यायेन योज्यम् । **तेषां** = कामरसिकानाम् **अनङ्गज्वरक्लान्ताः** = कन्दर्पार्त्तिपीडिताः । **त्रस्तकुरङ्गशावकदृशो** = वित्रस्तमृगार्भकचञ्चलदृष्टयः **स्त्रियो** = नायिकाः **वश्या भवन्ति** = रागपरवशा जायन्ते । भगवतीरूपमात्रस्मरणाधि-रूढध्यानपरमकोटिसंटङ्केन शक्तिभेद इत्यर्थः । यदुक्तं कामरूपपञ्चाशिकायां

सिदूरारुणतेयं जे जं चिंतइ तरूणसंकासम् ।
तडितरलतेयभासं आणइ दूरत्थिया नारी ॥१॥

सिन्दूरारुणतेयं, तिक्कोणं बंभगंठिमज्झत्थम् ।
झाणेण व कुणइ वसं अमरवहूसिद्धसंघायं ॥२॥

अन्यत्राप्युक्तम्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीतं स्तम्भेऽरुणं वश्ये क्षोभणे विद्रुमप्रभम् ।
अभिचारेऽञ्जनाकारं विद्वेषे धूमधूमलम् ॥

इति नवमवृत्तार्थः ॥९॥

भाषा—धर्मपुरुषार्थ के साधन को कहकर अब कामपुरुषार्थ की सिद्धि के लिये श्रीभगवती की मूर्ति का ध्यानवर्णन करते हैं । हे श्रीभगवती ! ये = जो पुरुष क्षणम् अपि = क्षणमात्र भी अनन्यमनसः = एकाग्रचित्त होकर ध्यानसमाधि में इमाम् द्याम् = इस आकाशमण्डल को त्वत्तेजसा = आपके तेज से सिन्दूरपरागपुञ्जपिहिताम् = सिंदूर के चूर्ण समान रक्त रंगी पश्यन्ति = देखते हैं । च = और उर्वीम् = इस पृथ्वीमण्डल को विलनियावकरसप्रस्तारमग्नाम् इव = टपकते हुए लाक्षारस के बिन्दुओं के समान रक्त रंगी देखते हैं । तेषाम् = उन साधक पुरुषों के अनङ्गज्वरक्लान्ताः = कामज्वर से पीड़ित हुई और त्रस्तकुरङ्गशावकदृशः = डरते हुए हरिण के बच्चे के समान मनोहर नेत्रोंवाली स्त्रियः = वाञ्छित स्त्रियाँ वश्याः भवन्ति = वश हो जाती हैं । भावार्थ यह है कि श्रीभगवती की रक्तवर्ण मूर्ति का ध्यान करने से और पूर्वोक्त कामबीजाक्षर का जाप करने से साधक पुरुषों को मनोवाञ्छित वश्यसिद्धि हो जाती है अर्थात् वह साधक जिस पुरुष को या स्त्री को अपना वशवर्त्ती करना चाहता है, वह तत्काल साधक पुरुष का वशवर्त्ती हो जाता है ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०

अर्थसारत्वाज्जगतोऽतः पुरुषार्थसारमर्थसिद्धिमाह-**चञ्चदिति** ।

चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरामाबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि त्वद्गते क्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थिराम् ।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारीभवन्त्यश्रिरं
माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः स्थैर्यं भजन्ति श्रियः ॥१०॥

व्याख्या—हे भगवति ! **ये** = पुमांसः **क्षणमपि** = निमेषमात्रमपि **त्वद्गते चेतसि** = त्वन्मये चित्ते **चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधराम्** = देदीप्यमान-सौवर्णकुण्डलबाहुरक्षकाम् । तथा **आबद्धकाञ्चीस्रजं** = निबद्धमेखलां **देवीं** = भगवतीं **त्वां स्थिरां कृत्वा** = स्थिरतया निवेश्य **ध्यायन्ति** = स्वात्मानं तन्मयतया स्मरन्ति **तेषां** = निस्तुषभागधेयानां **वेश्मसु** = गृहेषु **विभ्रमात्** औत्सुक्येन **अहरहः** = दिने दिने **स्फारीभवन्त्यः** = विस्तारं प्राप्नुवन्त्यः उत्तरोत्तरं वर्द्धमानाः **माद्यत्कुञ्जर-कर्णतालतरलाः** = मदोन्मत्तगजकर्णचञ्चलाः **श्रियो** = लक्ष्म्यः **चिरं** = चिरकालं **स्थैर्यं भजन्ति** = स्थिरीभूय तिष्ठन्ति । पीतध्यानस्य लक्ष्मीमूलत्वात्, यदुक्तं मागधीभाषायाम्-

झलहलयतेयसिहिणा कालानलकोडिपुंजसारिच्छा ।
झाइज्जइ नासग्गे पाविज्जई सासया रिद्धी ॥१॥

बंभकुडिये कुम्मो पीडिज्जंतो वि कणयसंकासो ।
थंभई जलजलणं तुरगगयचक्कभाविदो नूणं ॥२॥

अतस्तप्तकाञ्चनसत्त्वस्य ध्यानान्निरवधिनिधिसमृद्धिभाजनं ध्याता भवतीति दशमवृत्तार्थः ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा—इस जगत् में द्रव्य ही मुख्य सार वस्तु है, अतएव द्रव्य की सिद्धि के लिये श्रीभगवती की पीत मूर्ति का ध्यान कहते हैं । हे श्रीभगवती ! ये = जो पुरुष क्षणम्-अपि = क्षणमात्र भी त्वद्गते-चेतसि = आपके ध्यान में एकाग्र बने हुए चित्त में चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधराम् = देदीप्यमान सुवर्णमय कुण्डलों को तथा भुजबन्धों को धारण करनेवाली और आबद्धकाञ्चीस्रजम् = सुवर्णमय कटिबंध को धारण करनेवाली त्वाम् = आप की मूर्ति को स्थिराम्-कृत्वा = निश्चलरूप से ध्यायन्ति = स्मरण करते हैं । तेषाम् = उन उत्तम भाग्यवाले पुरुषों के वेश्मसु = घरों में अहः-अहः = दिन प्रति दिन विभ्रमात् = बड़े उत्साह से स्फारीभवन्त्यः = विस्तार को प्राप्त होती हुई और माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः = मदोन्मत्त हाथी के कानों के फटकार के समान अत्यन्त चंचल स्वभाववाली श्रियः = धनलक्ष्मी चिरम् = बहुत कालपर्यन्त स्थैर्यं = भजन्ति स्थिर हो जाती हैं । अर्थात् पीतवर्ण का ध्यान लक्ष्मीदायक होने के कारण इस पूर्वोक्त सुवर्ण के आभूषणों से शोभित श्रीभगवती की मूर्ति का ध्यान करने से साधक पुरुष धनकी महान सम्पदा को प्राप्त करता है ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११

ध्येयध्यानताद्रूप्यमाह-**आर्भट्येति** ।

आर्भट्या शशिखण्डमण्डितजटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं
मध्ये निम्नवलित्रयाङ्कितनुं त्वद्रूपसंवित्तये ॥११॥

व्याख्या—शशिखण्डमण्डितजटाजूटाम्= चन्द्रकलालङ्कृतमौलिं **नृमुण्डस्रजं** = कपालमालाधारिणीं **बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां** = जपापुष्परक्तवस्त्रां **चतुर्भुजां** = बाहुचतुष्टयवतीं **त्रिनेत्रां** = त्रिलोचनाम् । **आपीनतुङ्गस्तनीं** = समन्तात्पृथुलोच्चकुचाम् **मध्ये** = नाभेरधो **निम्नवलि-त्रयाङ्कितनुं** = चञ्चत्रिवलितरङ्गां **त्वां** = भगवतीं **त्वद्रूपसंवित्तये ध्यायन्ति** = सर्वसिद्धिमयत्वद्रूपप्राप्तये त्वामेव स्मरन्ति योगिन इति शेषः । पुनः किम्भूताम् ? **प्रेतासनाध्यासिनीं** = प्रेतासनं ह्सौं इति बीजं तदध्यास्ते ताच्छील्ये णिनिः । यदाह देवीजन्मपटले त्रिपुरासारे-

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
पञ्चैते च महाप्रेता पादमूले व्यवस्थिताः ॥१॥

तत्कर्णिकोपरिकपञ्चमतुर्ययुक्तानुस्वारमम्बुजतदन्तयुतं निधाय ।
प्रेताधिपां तदुपरि त्रिदशैकवन्द्यां ध्यायेत लोकजननीं त्रिपुराभिधां ताम् ॥२॥

कथं स्मरन्तीत्याह **आर्भट्या** = उद्धतया वृत्त्या । भारतीसात्वतीकौशिकीप्रमुखवृत्तयो हि शान्ताः । आर्भटीवृत्तिस्तु वीररसाश्रया । यदाह सरस्वतीकण्ठाभरणालङ्कारे भोजराजः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौशिक्यारभटी चैव भारती सात्वती परा ।
मध्यमारभटी चैव तथा मध्यमकौशिकी ॥१॥

सुकुमारार्थसन्दर्भा कौशिकी तासु कथ्यते ।
या तु प्रौढार्थसन्दर्भा वृत्तिरारभटी तु सा ॥२॥

कोमला प्रौढसन्दर्भा कोमलार्था च भारती ।
प्रौढार्थां कोमलप्रौढसन्दर्भां सात्वतीं विदुः ॥३॥

कोमलैः प्रौढसन्दर्भबन्धैर्मध्यमकौशिकी ।
प्रौढार्था कोमले बन्धे मध्यमारभटीष्यते ॥४॥

उदाहरणानि तत एवावगन्तव्यानि । 'आर्भटी' 'आरभटी' इति शब्दयोर्मध्ये विशेषस्तु वर्षा-वरषादिशब्दवत् । अत आर्भटीत्युच्चारणे न दोषः । अतः सोद्धतजापेन भगवत्या निर्मलस्फटिकसङ्काशरूपस्य ध्यानी मनीषितां सिद्धिं लभते। न च मुत्कलनिष्पङ्कचित्तस्य ध्यातुर्दुष्करं किमपि । यदुक्तं मागधीभाषायाम्-

चित्ते बद्धे बद्धो मुक्को य नत्थि संदेहो
विमलसहाउ अप्प मइलिज्ज मइलिए चित्ते ॥१॥

इत्येकादशवृत्तार्थः ॥११॥

भाषा—धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थों के साधनों को कहकर अब मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये श्रीभगवती की मूर्ति का ध्यान कहते हैं । भगवती ! शशिखण्डमण्डितजटाजूटाम् = चन्द्रमा के खण्ड से शोभायमान जटाजूटवाली और नृमुण्डस्त्रजम् = मनुष्यों के कपालों की माला को धारण करनेवाली और बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधराम् = दुपारी पुष्प के समान रक्त वस्त्रों को धारण करनेवालीं और प्रेतासनाध्यासिनीम् = प्रेतासन के ऊपर बैठी हुई चतुर्भुजाम् = चार भुजावाली त्रिनयनाम् = तीन नेत्रोंवाली और आपीनतुङ्गस्तनीम् = अतिपुष्ट तथा अतिउच्च स्तनोंवाली और मध्ये = मध्यभाग में निम्नवलित्रयाङ्कितततनुम् = तीन रेखाओं से शोभित शरीरवाली त्वाम् = आपकी मूर्ति को आर्भट्या = अत्यन्त कठिन वृत्ति से योगिजन त्वद्रूपसंवित्तये = आप के ब्रह्मानन्द स्वरूप के अनुभव करने के लिये ध्यायन्ति = स्मरण करते हैं । अर्थात् इस श्रीभगवती के स्वरूप का ध्यान करने से साधक पुरुष मोक्ष पद को प्राप्त हो जाते हैं ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२

अमुमेवार्थं दृष्टान्तेन दर्शयन्नाह-**जात** इति ।

जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निश्शेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजोऽभव-
देवि त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः ॥१२॥

व्याख्या—हे **देवि** ! **अल्पपरिच्छदे** = स्तोकपरिवारे **सामान्यमात्रे** = अनुत्कृष्टे **क्षितिभुजां** = राज्ञां **कुले** = वंशे **जातोऽपि** = लब्धजन्मापि **श्रीवत्स-राजः** = अयं सामान्यनृपः यद् = **यस्मात्कारणात् निश्शेषावनि-चक्रवर्त्तिपदवीं लब्ध्वा** = अखण्डमहीमण्डलसार्वभौमपदवीं प्राप्य **प्रतापोन्नतः** = शत्रूच्छेदकृत् कीर्ति-श्रेयस्करस्तथा **विद्याधरवृन्दवन्दितपदः** = खेचरचक्रचर्चितचरणः **अभवत्** = बभूव, **सोऽयं** = सर्वोऽप्ययं **प्रसादोदयः त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः** = तव पादकमल-नमस्कारसम्भूतोऽनुभावोऽयम् । किलायं श्रीवत्सराजनामा सामान्यनृपोऽपि यदकस्मादनेकनरनायकमुकुटकोटिटघृष्टपादो जातः स निश्चितं पूर्वकाव्योक्तव्यक्त-भगवतीरूपानुध्यानसम्भव एव प्रसादातिशय इति भावार्थसङ्कलितद्वादशवृत्तार्थः ॥१२॥

भाषा—इन पूर्वोक्त श्रीभगवती की मूर्तियों के ध्यान के और बीजाक्षरमन्त्रो के जाप के प्रभाव को दृष्टान्त से प्रत्यक्ष दिखाते हैं । हे देवि= श्रीभगवती अल्पपरिच्छदे= तुच्छ परिवारवाले और सामान्यमात्रे= अत्यन्त साधारण राज्ञाम् कुले= राजाओं के वंश में जातः अपि= जन्मा हुआ भी श्रीवत्सराजः= श्रीवत्सराज नाम का राजा यत्= जिस कारण से निःशेषावनिचक्रवर्तिपदवीम्= समग्र पृथ्वी पर चक्रवर्ति की पदवी लब्ध्वा= पाकर प्रतापोन्नतः= अपने प्रताप से शत्रुओं को नाश करता हुआ विद्याधरवृन्दवन्दितपदः= अन्त में विद्याधर देवताओं को नमस्कार करने योग्य चरणवाला अभवत्= हो गया । सः अयम् प्रसादोदयः= सो यह इतना प्रभाव त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः= आप के चरणारविन्दों के नमस्कार करने से ही उत्पन्न हुआ था ॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवत्या एव माहात्म्यमाह-**चण्डीति** ।

चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते बिल्वीदलोल्लुण्ठना-
त्त्रुट्यत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्डाङ्कुश-चक्र-चाप-कुलिश-श्रीवत्स-मत्स्याङ्कितै-
र्जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ॥१३॥

व्याख्या—हे **चण्डि** ! श्रीभगवति ! **त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते** = तव पादकमलपूजार्थे **येषां** पुरुषाणां **कराः** = हस्ताः, **बिल्वीदलोल्लुण्ठनात्** = बिल्वपत्रत्रोटनात्, **त्रुट्यत्कण्टककोटिभिः** लग्नकण्टकाग्रैः, **परिचयं** = सम्पर्कं, **न जग्मुः** = न गताः, ते = पुमांसः **दण्डाङ्कुशचक्रचाप-कुलिशश्रीवत्स-मत्स्याङ्कितैः** = एतल्लक्षणलक्षितैः, **अम्भोजप्रभैः पाणिभिः** = कमल-सदृशकोमलकरैरुपलक्षिताः **पृथिवीभुजः** = नरेन्द्राः, कथमिव जायन्ते । ये श्रीफलधत्तूरतुलसीपत्रादिभिर्भगवतीं नार्चयन्ति ते कथं यथोक्तलक्षणा राजानो भवन्तीत्यर्थः । तत्र दण्डो = गदा, चापं = धनुः, कुलिशं = वज्रं, श्रीवत्सो हि हृदयचिह्नम् अङ्कुशचक्रमत्स्याः प्रसिद्धाः, एतानि लक्षणानि सार्वभौमानामेव भवन्ति । यदुक्तं सामुद्रिके-

पद्मवज्राङ्कुशच्छत्रशङ्खमत्स्यादयस्तले ।
पाणिपादेषु दृश्यन्ते यस्यासौ श्रीपतिः पुमान् ॥१॥

इत्यादि ज्ञेयम् । पूजां विना च न प्रौढसमृद्धिः । यदुक्तं महादेवपूजाष्टके-

पूजया विपुलं राज्यमग्निकार्येण सम्पदः । इति, **न पूजावर्जितं सौख्यम्** इति प्रथमकाव्येऽपि भणनाच्च । चण्डीत्यामन्त्रणं, न सुखाराध्या भगवतीति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रौद्रशब्दोपादानमिति त्रयोदशवृत्तार्थः ॥१३॥

भाषा—श्रीभगवती की पूजा के प्रभाव को दिखाते हैं । हे चण्डि ! दुराराध्या श्रीभगवती ! येषां=जिन पुरुषों के करा:=हाथ त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते=आप के चरणारविन्दों की पूजा के लिये बिल्वीदलोल्लुण्ठनात्=बिल्वपत्रों को तोड़ने को और त्रुटयत्कण्टककोटिभिः=टूटते हुए उन बिल्वीपत्रों के कण्टकों के अग्रभागों से परिचयम्=मिलाप को न जग्मुः=नहीं प्राप्त हुए हैं अर्थात् जिन पुरुषों के हाथों में श्रीभगवती की पूजा के निमित्त बिल्वपत्रों को तोड़ते समय उन पत्रों के तीक्ष्ण काँटे नहीं चुभे हैं । ते वे पुरुष दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समस्याङ्कितैः=गदा, अंकुश, चक्र, धनुः, वज्र, श्रीवत्स, मत्स्य इन चिह्नों की रेखाओं से युक्त, अम्भोजप्रभैः=कमल के समान कोमल पाणिभिः=हाथों से उपलक्षित हो कर कथम् इव पृथिवीभुजः जायन्ते =पृथ्वीपति राजा कैसे हो सकते हैं । अपितु किसी प्रकार से नहीं हो सकते हैं । अर्थात् श्रीभगवती की पूजा के प्रभाव से ही पूर्वोक्त चिह्नों की और राज्य की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४

पूजाफलमुक्त्वा होमफलमाह-**विप्रा** इति ।

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वैक्षवै-,
स्त्वां देवि ! त्रिपुरे ! परापरकलां सन्तर्प्य पूजाविधौ ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां येषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः ॥१४॥

व्याख्या—हे देवि हे त्रिपुरे ! विप्राः = ब्राह्मणाः, **क्षोणि-भुजः** = क्षप्रात्रियाः **विशः** = वैश्याः, **तदितरे** = शूद्राः, अमी चातुर्वर्ण्यलोकाः **परापरकलां** = प्राचीनार्वाचीनावस्थामयीं, त्वां भगवतीं **पूजाविधौ** = पूजावसरे, **क्षीराज्यमध्वैक्षवैः** = घृत-माक्षिकेक्षुरसैः, **सन्तर्प्य** = प्रीणयित्वा, त एव ब्राह्मणक्षत्रियादयः **तरसा** = बलेन **विघ्नैरविघ्नीकृताः** = उपद्रवैरबाधिताः सन्तः, **तां तां** मनीषितां वश्याकृष्टिराज्यादिकां **सिद्धिं** = लब्धि, **ध्रुवं** = निश्चयेन, **अवाप्नुवन्ति** = लभन्ते, **यां यां सिद्धिं स्थिरधियां** = तदेकाग्रचित्तानां, **तेषां** = ध्यातृणां, **मनः** = चित्तं, **प्रार्थयते** = अभिलषति, तामेव सिद्धिं लभन्त इत्यन्वयः ।

अयं भावः-ये किल षट्कोणे चतुष्कोणे वा वृत्तेऽर्द्धचन्द्राकारेऽन्याकारे वा हस्तोर्ध्वे कुण्डे शोधनं क्षालनं पावनं शोषणञ्च कृत्वा परितो हरशक्रादीन् देवान् न्यस्य मध्ये कुशाम्भसाभ्युक्ष्य पुष्पगन्धाद्यैः संपूज्य तत्र परदेवतां ध्यात्वा सूर्यकान्तादरणि-काष्ठाच्छ्रोत्रियागाराद्वा वह्निमाहृत्य हैमे शौल्वे मृन्मये वा पात्रे निधाय वह्निं प्रतिष्ठामन्त्रेण न्यस्य हृदयमन्त्रेण घृताहुतीर्दत्त्वा कार्यानुसारेण रक्तातिरक्ता-कनकहिरण्याद्याः सप्तजिह्वाः परिकल्प्य संप्रोक्षणं मन्त्रं शुभं वर्णावर्त्तशब्दादिकं विचारयन्तः पूर्णाहुतिपर्यन्तं दक्षिणभागस्थदधिदुग्धादीनां चुलुकं चुलुकं जुह्वति तेषां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रीता भगवती सर्वसिद्धिं सम्पादयति । अग्निप्रतिष्ठामन्त्रश्चायम्-

मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं नोत्वरिष्टम्
यज्ञं तमिमं दधातु विश्वेदेवा स इह मादयन्तां मां प्रतिष्ठा इति ।

विस्तरस्त्वस्य गुरुमुखाज्ज्ञेयः । इति चतुर्दशवृत्तार्थः ॥१४॥

भाषा—इतने ग्रन्थ से श्रीभगवती की पूजा के फल को कहकर अब होम[१] का फल बतातें हैं । हे देवि = दिव्य स्वरूपवाली ! त्रिपुरे = श्रीभगवती विप्राः = ब्राह्मण, क्षोणिभुजः = क्षत्रिय, विशः = वैश्य, तदितरे = शूद्र यह चारों वर्णों के लोगों में से जो कोई पूजाविधौ = पूजा करने के समय में त्वाम् = आप को क्षीराज्यमध्वैक्षवैः = दूध, घृत, सहद, शक्कर आदि मधुर पदार्थों से सन्तर्प्य = तृप्त करते हैं अर्थात् आप को समर्पण किये हुए इन पूर्वोक्त हव्य वस्तुओं को जो कोई पुरुष अग्निकुण्ड में होमते हैं ते एव = वे होम करनेवाले पुरुष ही तरसा = शीघ्र ही विघ्नैः अविघ्नीकृताः = तमाम उपद्रवों से रहित हो जाते हैं । स्थिरधियाम् = स्थिर बुद्धिवाले तेषाम् = उन पुरुषों का मनः = चित्त यां यां = जिस जिस सिद्धि को प्रार्थयते = चाहता है तां तां सिद्धिम् = उस उस मनोवाञ्छित सिद्धि को वे पुरुष ध्रुवम् = निश्चय ही अवाप्नुवन्ति = प्राप्त करते हैं ॥१४॥

१. किंचिन्मात्र होम करने की विधि कहते हैं-साधक पुरुषों को चाहिए कि, प्रथम छह कोणवाला या चार कोणवाला या गोल आकारवाला अर्द्धचन्द्राकारवाला या कोई दूसरे शास्त्रोक्त आकारवाला एक हाथ का अग्निकुण्ड बनावे और उसका शोधन, क्षालन, पावन, शोषण करके उस कुण्डोकी चारों तरफ शङ्करआदि देवताओं की मूर्तियों को स्थापित करे । तदनन्तर उस कुण्डके मध्य भाग को दर्भसंयुक्त पवित्र जलसे सींचकर और पुष्प, धूप आदि षोडश उपचारों से पूजकर उस स्थानपर श्रीभगवती का स्मरण करके सूर्यकान्तमणि से या काष्ठमथन से या ब्रह्मचारी के आश्रम से अग्नि को लाकर सुवर्ण के या ताम्बे के या मिट्टी के पात्र में उपरोक्त प्रतिष्ठामन्त्र से स्थापित करे, बाद में पूर्वोक्त मुख्य मन्त्र से अग्नि में प्रथम सात घृत की आहुति दे, तदनन्तर अपने कार्यानुसार मन्त्र उच्चारण करता हुआ पूर्णाहुतिपर्यन्त अपने दाहिनी ओर स्थित दूध, घृतआदि होम के द्रव्यों को एक एक चिलू जुहू से होमता जाते । इस विधि से जो पुरुष होम करता है उस पुरुष के सम्पूर्ण मनोरथों को श्रीभगवती सफल कर देती है । इस होम करने का विशेष विस्तार अपने गुरु के मुखारविन्द से जान लेना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५

अथ भगवत्या एव सर्ववाङ्मयत्वं सर्वदैवतमयत्वञ्चाह-**शब्दानामिति** ।

शब्दानां जननि त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति ध्रुवम् ।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे[1] ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे ॥१५॥

व्याख्या—हे भगवति त्रिपुरे ! **अत्र भुवने** चतुर्दशात्मके **शब्दानां** = रूढ-यौगिकादिभेदभिन्नानां नाम्नां **जननी** = उत्पादयित्री **त्वमसि** अतस्त्वं **वाग्वादिनी इति** = वाचो वाणीर्वदतीत्येवंशीलेति **उच्यसे** = कथ्यसे ।

एतावता सर्वशास्त्राणि त्रिपुरातः प्रादुर्भूतानि ज्ञेयानि न तु यथा बौद्धानाम् ।

तस्मिन्ध्यानसमापन्ने चिन्तारत्नवदास्थिते ।
निस्सरन्तियथाकामं कुड्यादिभ्योऽपि देशनाः ॥१॥ इत्यादि

अतो वेद-सिद्धान्तव्याकरणालङ्कार-काव्यादि-शास्त्राणि भगवतीरूपाण्येवेति । अन्यच्च **ध्रुवं** = निश्चितं **केशववासवप्रभृतयोऽपि** = हरिहरब्रह्मप्रमुखाः इन्द्रयमवरुण-कुबेराग्निनैर्ऋतवाय्वीशानप्रमुखाश्चापि देवा**स्त्वत्तः** = प्रादुर्भवन्ति, भगवत्याः सकाशादेवामी देवा उत्पद्यन्त इत्यर्थः, सृष्टिवृष्टिपालनज्वालन-ज्ञानदानबीजाधानादितत्तद्विधेय-कार्याणां भगवत्या एवोत्पादकत्वात्, तेऽपि तन्मया एवेति । तथा **कल्पविरमे** = क्षयकाले **तेऽमी** ब्रह्मादयोऽपि जगदुत्पत्ति-स्थितिनाशक्षमा अपि **यत्र** भगवत्यां **लीयन्ते**। युगान्ते हि सर्वद्रव्याधार-प्रलयलीलायाः त्वय्येवावस्थानात्, सर्वेऽपि देवा महामायास्वरूपां त्वामेवानुप्रव-

---

१. विरतौ इति (जि०) पाठ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शन्ति । उपसंहारमाह-**सा** पूर्वोक्तस्वरूपा काचित् वर्णयितुमशक्या अचिन्त्यरूप-महिमा अलक्ष्यरूपप्रभावा त्वं **परा शक्तिः गीयसे** = कथ्यसे, योगिभिरिति शेषः । **ननु** शक्तेरपि शिवात्मकत्वात्तन्नाशे तस्या अपि नाश इति **चेन्न**, शिवव्यतिरिक्तायाः शक्तेः परमार्थमयत्वात्, यदुक्तं मागधीभाषायाम्-

शिवशक्ति भेलावह इहु जाणइ सहु कोई ।
भिन्नी शक्ति शिवांह विणु विरलु बुझइ कोई ॥१॥

इति गर्भार्थसन्दर्भितपञ्चदशवृत्तार्थः ॥१५॥

भाषा—अब, 'श्रीभगवती ही सर्व वाणीस्वरूप और सर्व देवतास्वरूप है'-ऐसे हृदयभावों से स्तवना करते हैं । हे भगवती ! अत्र भुवने = इस चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड में शब्दानाम् = रूढ, यौगिक आदि अनेक भेदों से भिन्न समग्र शब्दों को जननी = प्रकट करनेवाली त्वम् = आप ही हो इति = इसलिये आप वाग्वादिनी उच्यसे = [1]वाग्वादिनी [समग्र शास्त्रों के रहस्यों को यथार्थ जाननेवाली] नाम से कहलाती हो । और केशववासवप्रभृतयो अपि देवाः = विष्णु, ब्रह्मा, महेश आदि तथा इन्द्रादिक लोकपाल देवता भी ध्रुवम् = निश्चय ही त्वत्तः = आप से आविर्भवन्ति = उत्पन्न होते हैं । और कल्पविरमे = प्रलयकाल में ते अमी ब्रह्मादयः अपि = वे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, नाश, करनेवाले ब्रह्मा आदि भी यत्र = जिस महामायारूप श्रीभगवती के स्वरूप में लीयन्ते = लीन होते हैं सा = वह काचित् = कोई अचिन्त्य-रूपमहिमा = अलक्ष्य स्वरूपवाली त्वम् = आप ही परा-शक्तिः = अखण्ड अनवच्छिन्न शक्ति नाम से गीयसे = शास्त्रों में वर्णन की जाती हो अर्थात् समग्र शास्त्रों की तथा समग्र जगत् की सृष्टि, स्थिति, नाश करनेवाली जो अविनाशिनी[2] शक्ति है, वह श्रीमद्भगवती त्रिपुरा ही है ॥१५॥

---

१. इस विशेषण से ज्ञात होता है कि, समस्त वेद, वेदान्त, काव्य, कोश अलङ्कार, न्याय, वैशेषिक आदि शास्त्र श्री त्रिपुरा देवी से ही उत्पन्न हुए हैं ।

२. यदि कोई वादी शङ्का करे कि, शक्ति शिवात्मक होने से शिव का विनाश होने पर शक्ति का भी नाश होना सम्भव है । यहाँ यह प्रत्युत्तर देना चाहिये कि, जो अखण्ड अनवच्छिन्न अविनाशिनी शक्ति है वह शिवात्मक नहीं है अर्थात् वह शिव से व्यतिरिक्त है, जैसे ऊपर मागधी भाषा में लिखा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिपुरेतिनामप्रत्ययेन सर्वत्रयात्मकवस्तूनां भगवत्या सह साम्यमाह-**देवानामिति** ।

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः ।
यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गादिकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥१६॥

व्याख्या—देवानां = ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणां त्रितयी त्रिसंख्यात्मकता । यदि वा देवशब्देन गुरवस्तेषां त्रितयं गुरु-परमगुरु-परमेष्ठिगुरुरूपम्, तथा **हुतभुजां** = वैश्वानराणां **त्रयी** = गार्हपत्य-दक्षिणात्याहवनीयाख्यास्त्रयोऽग्नयः, त्रीणि ज्योतींषि । वा हृदयललाटशिरःस्थितानि, **शक्तित्रयम्** = इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिरूपम् । यद्वा-ब्राह्मीमाहेश्वरीवैष्णवीति शक्तित्रयम् । **त्रिस्वराः** = उदात्तानुदात्तस्वरिताख्याः । यद्वा-अकारेकारबिन्दुरूपास्त्रयः स्वराः । यद्यपि व्याकरणे चतुर्दशस्वरास्तथाप्यागमे षोडशस्वरत्वम् । यथोत्तरषट्के-**षोडशारं महापद्ममित्युक्त्वा प्रथमे स्वरसङ्गत-मित्युक्तेस्त्रय** एव स्वराः । **त्रैलोक्यं** = स्वर्गमर्त्यपातालरूपम् । यदि वा मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकमित्येको लोकः, अनाहतनिरोधविशुद्धिरिति द्वितीयः, आज्ञाशीर्षब्रह्मस्थानमिति तृतीय इति त्रैलोक्यं ज्ञेयम् । **त्रिपदी** = जालन्धर-कामरूपोड्डीयानपीठरूपा, यदि वा-गगनानन्दपरमानन्दकमलानन्दा इति नाथत्रयम् । त्रिपदी गायत्री वा । **त्रिपुष्करं** = शिरोहृदयनाभिकमलरूपम्, तीर्थत्रयं वा । **त्रिब्रह्म** = इडापिङ्गलासुषुम्णारूपम् । यदि वा अतीतानागतवर्त्तमानज्ञानप्रकाशकं ह्रद्व्योम-ब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मत्रिकम् । वर्णास्त्रयः-ब्राह्मणादयः । वाग्भवं कामराजं शक्तिबीजञ्चेति मूलमन्त्रः एव वर्णत्रयं वा, तन्मयत्वाद्वाङ्मयस्य । उपसंहारमाह-**यत् किञ्चित्** = जगति संसारे **त्रिवर्गादिकं** = धर्मार्थकामरूपादिकं यत् किञ्चिल्लोके वर्त्तमानं चराचरवृत्तानावृत्तस्थूलसूक्ष्मलघुगुरुकठिनकोमलनीचोच्चत्र्यस्रचतुस्राद्यनेक-भेदविविधं वस्तु **त्रिधा** = त्रिभिः प्रकारैः **नियमितं** = निबद्धम्, हे भगवति देवि!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्सर्वं वस्तु **तत्त्वतः** = परमार्थतः त्रिपुरेति **ते** = तव **नाम** = नामधेयम् **अन्वेति** = अनुगच्छति । त्रयात्मका ये भावास्ते सर्वे त्रिपुरानामान्तर्गता इति । यथा मतत्रयम्, मुद्रात्रयम्, वृक्षत्रयम्, सिद्धित्रयम्, इत्याद्यखिलं भगवत्याः स्वरूपमिदमिति षोडशवृत्तार्थः ॥१६॥

भाषा—अब ग्रन्थकर्त्ता श्री भगवती के त्रिपुरा नाम में समग्र त्रिसंख्यात्मक वस्तुओं के प्रवेश की उत्प्रेक्षा करते हैं । हे भगवति श्रीत्रिपुरा देवी ! जगति = संसार में यत्-किञ्चित् = जो कुछ त्रिधा-नियमितम् = तीन संख्या से नियमित किया हुआ त्रिवर्गादिकम् = धर्म, अर्थ, काम आदि वस्तु वर्त्तमान हैं । तत्-सर्वम् = वह समग्र वस्तु तत्त्वतः = यथार्थरूप से त्रिपुरा-इति ते नाम = आप के त्रिपुरा ऐसे नाम में ही अन्वेति = प्रवेश होती है । अर्थात् जो कुछ संसार में त्रिसंख्यात्मक वस्तु हैं, वह सब भगवती के त्रिपुरा नाम से ही उत्पन्न हुई हैं । अब अगणित त्रिसंख्यात्मक वस्तुओं में से कितनेक वस्तुओं के नाम यहाँ गिनाये जाते हैं, जैसे देवानाम्-त्रितयी = तीन देव ब्रह्मा, विष्णु, महेश । या देवशब्द से गुरु लेना चाहिये जैसे गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु और हुतभुजाम्-त्रयी = तीन अग्नि जैसे गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय । या अग्निशब्द से ज्योतिः ली जाती है जैसे हृदयज्योतिः, ललाटज्योतिः, शिरोज्योतिः । शक्तित्रयम् = तीन शक्तियाँ, जैसे इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, या शक्ति शब्द से देवियाँ ली गई हैं, जैसे ब्रह्माणी, वैष्णवी, रुद्राणी । त्रिस्वराः = तीन स्वर जैसे उदात्त, अनुदात्त, स्वरित । या स्वर शब्द से मन्त्रशास्त्रों में कहे हुए षोडश स्वरों में से तीन स्वर लेने चाहिये जैसे अकार, इकार, बिन्दु । त्रैलोक्यम् = तीन लोक, जैसे स्वर्ग, भूलोक, पाताल । अथवा लोकशब्द से देहस्थ तीन चक्र लेना चाहिये, जैसे मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूरक, अनाहत निरोध विशुद्धि, आज्ञा शीर्ष ब्रह्मस्थान । त्रिपदी = तीन पद, जैसे जालन्धर, कामरूप, उड्डीयानपीठ । या पदशब्द से नाथ लेना चाहिये, जैसे गगनानन्द, परमानन्द, कमलानन्द । अथवा त्रिपदीशब्द से तीन पदोंवाली गायत्री लेनी चाहिये, जैसे ॐ भूर्भूवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गोदेवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् । त्रिपुष्करम् = तीन तीर्थ जैसे शिर, हृदय, नाभि । या पुष्कर शब्द से तीनों पुष्कर लेना चाहिये, जैसे ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर, कनिष्ठ पुष्कर। त्रिब्रह्म = तीन ब्रह्म, जैसे इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा । या ब्रह्म शब्द से अतीत, अनागत, वर्त्तमान कालको प्रकाशित करनेवाले ब्रह्म कहे गये हैं, जैसे हृदय, व्योम, ब्रह्मरन्ध्र । त्रयः वर्णा = तीन वर्ण, जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या वर्णशब्द से अक्षर लिये गये हैं, जैसे वाग्बीज, कामबीज, शक्तिबीज इत्यादि जान लेना चाहिये ॥१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुग्धमतिचित्तप्रीतये किञ्चिन्नामधेयस्मरणफलमपि प्रकाशयन्नाह-लक्ष्मीमिति ।

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणमुखे क्षेमङ्करीमध्वनि
क्रव्याद-द्विप-सर्पभाजि शबरीं कान्तारदुर्गे गिरौ ।
भूतप्रेतपिशाचजृम्भकभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्ताराञ्च तोयप्लवे ॥१७॥

व्याख्या—हे भगवति ! भक्तजना अमीषु सप्तस्थानेषु भवत्याः सप्त नामानि स्मृत्वा विपदस्तरन्ति इति सम्बन्धः । यथा **राजकुले** = भूपतिद्वारप्रवेशे **लक्ष्मीं** = कमलां नवयौवनां विचित्राभरणमालाधारिणीं छत्रचामरादिताद्दशासदृश-विभूतिमयीं तप्तस्वर्णसवर्णां भगवतीं स्मृत्वा तन्मनीभावभाजो राजवधबन्धापराध-महाव्याधिभ्यो मुच्यन्ते । एवं **रणमुखे जयाम्, क्रव्यादद्विपसर्पभाजि** = राक्षसगजकृष्णसर्पादिभीषणे **अध्वनि** = मार्गे **क्षेमङ्करीम्, कान्तादुर्गे** = कान्तारेण विषममार्गवनेन दुर्गे रौद्रे **गिरौ** = पर्वते **शबरीम्, भूतप्रेतपिशाचजृम्भकभये** = समुपस्थिते **महाभैरवीम्, व्यामोहे** = चित्तभ्रमे मतिमान्द्ये अयथार्थवस्तुज्ञाने त्रिपुरां **तोयप्लवे** = जलब्रुडने **ताराञ्च स्मृत्वा** = ध्यात्वा **विपदस्तत्तत्सङ्कटात् तरन्ति** = निस्तरन्ति, ध्यातार इति शेषः । तत्तत्कार्येषु साहाय्यदायिनीनां ध्येयरूप-वर्णायुधसमृद्धयो मुद्राश्च गुरुपरम्परातोऽवसेया इति सप्तदशवृत्तार्थः ॥१७॥

भाषा—मुग्ध जनों के चित्त की प्रसन्नता के लिये किंचिन्मात्र श्रीभगवती के नामस्मरण का भी फल दिखाते हैं । हे भगवती ! जो पुरुष राजकुले = राजदरबार में लक्ष्मीम् = लक्ष्मी स्वरूप का और रणमुखे = युद्धादिकों में जयाम् = जया स्वरूप का और क्रव्यादद्विपसर्पभाजि अध्वनि = सिंह, वाघ, राक्षस, हाथी, सर्प, आदि अनेक दुष्ट जानवरों से युक्त विषम मार्ग में क्षेमङ्करीम् =

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेमङ्करी स्वरूप का और कान्तारदुर्गे गिरौ = अतिभयंकर पर्वत आदि विषम स्थान में शबरीम् = शबरी स्वरूप का और भूतप्रेतपिशाचजृम्भकभये = भूत, प्रेत, पिशाच, आदि के भय में महाभैरवीम् = महाभैरवी स्वरूप का, और व्यामोहे = चित्तभ्रम होने में त्रिपुराम् = त्रिपुरा स्वरूप का तोयप्लवे = जल में डूब जाने आदि के भय में ताराम् = तारा स्वरूप का स्मृत्वा = एकाग्र चित्त से स्मरण करते हैं वे पुरुष विपदः = समग्र आपदाओं को तरन्ति = तिर जाते हैं। अर्थात् अकस्मात् ही कोई कष्ट उपस्थित हो जाने पर पूर्वोक्त श्रीभगवती के स्वरूपों का स्मरण करना चाहिये। क्योंकि समग्र कष्ट श्रीभगवती के अनुग्रह से तत्काल नष्ट हो जाते हैं ॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि भगवत्या नव कोटयः = पर्यायास्तथापि स्थानाशून्यार्थं योगिनीदोषविघातमन्त्रगर्भाणि कतिपयनामान्याह-**मायेति** ।

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥१८॥

व्याख्या—अत्र सामान्यतस्तावच्चतुर्विंशतिभगवतीनामानि कथितानि सन्ति तानि च पाठमात्रसिद्धानीति न पुनः प्रयास इति । विशेषतस्तु चतुष्षष्टियोगिनीनामत्र काव्ये गूढोक्तो मन्त्रोऽप्यस्ति । तत्र **माया**शब्देन मायाबीजं ह्रींकारः । **मालिनी**ति मा लक्ष्मीस्तद्बीजं श्रींकारः । **काली**ति कव्यञ्जनेन सहिता लीति काली तेन क्लीं इति सिद्धम् । बिन्दूच्चारणविभागो ज्ञेयः । शक्तिरिति शक्तिबीजं हसौं । वाग्वादिनीत वाग्बीजम् ऐंकारः, इति पञ्चबीजानि जातानि, आदौ प्रणवोऽन्ते च नमः इदं सर्वसामान्यं ज्ञेयम् । न्यासे पुनरयमक्षरक्रमः । यथा ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसौं नमः । एतस्याम्नायस्य पूर्वसेवायां जापः अष्टोत्तरसहस्रं १००८ प्रतिदिनमष्टोत्तरशतं वा जापे सुखमारोग्यं वश्यता समृद्धिर्बन्दीमोक्षश्च फलम् । ध्यानन्तु शान्ते कार्ये श्वेतम्, वश्ये रक्तम्, मोहने पीतम्, उच्चाटने कृष्णं ज्ञेयम् ।

इयन्तु योगिनीनां विद्या अतस्तत्प्रसङ्गेन योगिनी-दोषविघातकयन्त्रमपि भक्तोपकाराय प्रकाश्यते । तासां नामानि चैतानि-ब्रह्माणी, १. कुमारी, २. वाराही, ३. शाङ्करी, ४. इन्द्राणी, ५. कङ्काली, ६. करली, ७. काली, ८. महाकाली, ९. चामुण्डा, १०. ज्वालामुखी, ११. कामाख्या, १२. कपालिनी, १३. भद्रकाली, १४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्गा, १५. अम्बिका, १६. ललिता, १७. गौरी, १८. सुमङ्गला, १९. रोहिणी, २०. कपिला, २१. शूलकरा, २२. कुण्डलिनी, २३. त्रिपुरा, २४. कुरुकुल्ला, २५. भैरवी, २६. भद्रा, २७. चन्द्रावती, २८. नारसिंही, २९. निरञ्जना, ३०. हेमकान्ता, ३१. प्रेतासना, ३२. ईशानी, ३३. वैश्वानरी, ३४. वैष्णवी, ३५. विनायकी, ३६. यमघण्टा, ३७. हरसिद्धिः, ३८. सरस्वती, ३९. शीतला, ४०, चण्डी, ४१. शङ्खिनी, ४२. पद्मिनी, ४३. चित्रिणी, ४४. वारुणी, ४५. नारायणी, ४६. वनदेवी, ४७. यमभगिनी, ४८. सूर्यपुत्री, ४९. सुशीतला, ५०. कृष्णवाराही, ५१. रक्ताक्षी, ५२. कालरात्रिः, ५३. आकाशी, ५४. श्रेष्ठिनी, ५५. जया, ५६. विजया, ५७. धूमवती, ५८. वागीश्वरी, ५९. कात्यायनी, ६०. अग्निहोत्री, ६१. चक्रेश्वरी, ६२. महाविद्या, ६३. ईश्वरी, ६४. इति च । यन्त्रञ्चेदम् ।

२३	१८	१५	८
११	१२	१९	२२
१७	२४	९	१४
१३	१०	२१	२०

तासां कुङ्कुमगोरोचनाभ्यां यंत्रमिदं लिखित्वा विधिवत्फलपुष्पाभ्यां गन्धमुद्रानैवेद्यदीपधूपताम्बूलैः पूजां कृत्वा शुचिरेकाग्रमनाः चतुष्षष्टियोगिन्यः सर्वा अपि रुधिरामिषाक्षीरसुराप्रियाः, केलिकौतूहलगीतनृत्यरताः, लघ्वीतरुणीप्रौढावृद्धाः, भ्रमराग्निस्वर्णवर्णाः, विकटाक्ष्यः, विकटदन्ताः, मुत्कलकेशाः, करालजिह्वाः, अति-सूक्ष्ममधुरघर्घरोत्कृष्टनिनादाः, स्थिरचपलाः, शान्तरौद्राः, स्थूलबलघातप्रभ-विष्णुचतुर्भुजाः, दिव्यवस्त्राभरणाः, अंकुशपाशकपालकर्त्रिकात्रिशूलकरवाल-शङ्खचक्रगदाकुन्तधनुवज्राद्यायुधविभूषिताः, विष्कम्भादिसप्तविंशतियोगैरश्विन्यादि-काष्टाविंशतिनक्षत्रैः मेषादिद्वादशराशिभिः सूर्यादिनवग्रहैर्नरसिंहवीरक्षेत्रपाल-मणिभद्रमाहिल्लादियक्षैश्च परिवृत्ता ध्यात्वा पूर्वोक्तमन्त्रं जपेत् योगिनीदोषोऽपयाति ।

चतुष्षष्टिः समाख्याता योगिन्यः कामरूपिकाः ।
पूजिताः प्रतिपूजान्ते भवेयुर्वरदाः सदा ॥१॥

इति योगिनीचक्रमन्त्रविधानमप्यत्रान्तर्भूतमित्यष्टादशवृत्तार्थः ॥१८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा—यद्यपि श्री भगवती के नव कोटि नाम हैं, तो भी स्थान पूर्ति के लिये कितनेक नामों का यहाँ उल्लेख करते हैं । हे परमेश्वरी ! माया, १. कुण्डलिनी, २. क्रिया, ३. मधुमती, ४. काली, ५. कला, ६. मालिनी, ७. मातङ्गी, ८. विजया, ९. जया, १०. भगवती, ११. देवी, १२. शिवा, १३. शाम्भवी, १४. शक्ति, १५. शङ्करवल्लभा, १६. त्रिनयना, १७. वाग्वादिनी, १८. भैरवी, १९. ह्रींकारी, २०. त्रिपुरा, २१. परापरमयी, २२. माता, २३. कुमारी, २४. इत्यसि = यह आप के चौवीश नाम हैं । इन नामों का केवल पाठ करने से ही साधक पुरुष के पास सभी प्रकार की सिद्धियाँ उपस्थित रहती हैं ॥१८॥

विशेषार्थः—इस श्लोक में बीजाक्षर मन्त्रों का भी उद्धार किया गया है । जैसे माया शब्द से मायाबीज ह्रीँ, मालिनी शब्द से लक्ष्मीबीज श्रीँ, काली शब्द से कामबीज क्लीँ, शक्ति शब्द से शक्तिबीज ह्सौँ और वाग्वादिनी शब्द से वाग्बीज ऐँ का ग्रहण करना चाहिये । इन बीजाक्षरों की आदि में ॐ तथा अन्त में नमः लगा कर मन्त्र सिद्ध कर लेना जैसे ॐ ऐँ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ह्सौँ नमः । इस मन्त्र को नित्य १००८ बार या १०८ बार जपने से सुख, आरोग्य, वश्यता, समृद्धि, बन्दीमोक्ष, आदि समस्त कार्य, साधक जनों के सिद्ध हो जाते हैं । साधक पुरुषों को चाहिये कि, सौम्य कार्य में श्वेत मूर्ति का, वश्य कार्य में रक्त मूर्ति का मोहन कार्य में पीत मूर्ति का, उच्चाटन कार्य में कृष्ण मूर्ति का ध्यान करें । टीका में लिखे हुए चौसठ योगिनियों के नामों का जाप करने से और पूर्वोक्त योगिनीयों के यन्त्र को कुंकुम, गोरोचन आदि अष्टगन्ध से भूर्जपत्र पर लिखकर तथा धूप, दीप, नैवेद्य आदि से पूज कर योग, नक्षत्र, राशि, ग्रह और नरसिंह, वीरभद्र, क्षेत्रपाल, मणिभद्र आदि अपने गणों के सहित इन विलक्षण स्वरूपवाली चौसठ योगिनियों का ध्यान करने से योगिनियों के दोष नष्ट हो जाते हैं ॥१८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९

निश्शेषतया त्रिपुरनामोत्पत्तिसङ्ख्यामाह-**आईपल्लवितैरिति** ।

आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः ।
नामानि त्रिपुरे भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते
तेभ्यो भैरवपत्नि विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥१९॥

व्याख्या—हे त्रिपुरे भगवति ! **आईपल्लवितैः** = आकारेकारसंयुक्तनामान्तैः **परस्परयुतैः** = अन्योन्यमिलितैः **द्वित्रिक्रमाद्यक्षरैः** = द्वित्र्यादिवर्णवद्भिर्नामभिः । कैरित्याह-**काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिः** = कवर्णमादौ कृत्वा क्षकारं यावत् पञ्चत्रिंशद्वर्णैः षोडशभिः स्वरैः सह प्रत्येकं गण्यमानानि यानि नामानि भवन्ति । यथा अकाई, अखाई, अगाई, अघाई, अङाई, अक्षाई, इति यावत् । एवम् आकाई, आखाई, आगाई, आघाई, आङाई इति यावत् आक्षाई इत्यादि । अःक्षाई अःखाई-पर्यन्तानि षष्ट्यधिकानि पञ्चशतानि अङ्कतोऽपि ५६० । अथानन्तरं **क्षान्तैः** = क्षकारपर्यन्तैः **तैश्च** = ककाराद्यैश्च **आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्यानि** नामानि भवन्ति यथा ककाई, कखाई, कगाई, कघाई, कङाई, कक्षाईपर्यन्तम् । एवं खकाई, खखाई, खगाई, खघाई, खङाई, खक्षाईपर्यंतम् । एवं क्षकाई, क्षखाई, क्षगाई, क्षघाई, क्षङाई, क्षक्षाईपर्यन्तं पञ्चत्रिंशद्वर्णैः पञ्चत्रिंशता गुणितैर्जातानि द्वादशशतानि पञ्चविंशत्यधिकानि १२२५ इति । अन्यच्च तैरपि किंविशिष्टैः **सस्वरैः** = षोडश-स्वरसहितैः पाश्चात्त्यनामानि कथ्यमानानि भगवतीनामसु गण्यन्त इत्यर्थः । यथा-अककाई, अकखाई, अकगाई, अकघाई अकङाई, अकक्षाई, इति यावत् । एवम् आककाई, आकखाई, आकगाई, आकघाई, आकङाई आकक्षई, इति यावत् । एवं षोडशापि स्वराः पुनः खकाराद्यैः सह यथा अखकाई, अखखाई । एवम्-आखकाई, आखखाई, आखगाई, अगकाई, अगखाई । किंबहुना ? यावत् अक्षकाई, अक्षखाई, आक्षकाई, आक्षकाई आक्षक्षाई, पर्यन्तान्येकोनविंशतिसहस्राणि षट्शताग्राणि भवन्ति । यतो द्वादशशतानि पञ्चविंशत्यधिकानि षोडशस्वैरैर्गुणितानि अङ्कतो १९६०० भवन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वमेलनेन षष्ट्युत्तरशताधिकानि विंशतिसहस्राणि नामानि जायन्ते । अत्र तु ग्रन्थविस्तरभयाद्दिङ्मात्रमेव दर्शितम्, अभियोगपरायणैः स्वयमभ्यूहनीयानि । प्रस्तुतमाह-हे **भैरवपत्नि** रुद्राणि ! अनेनामन्त्रणेन तद्भार्यात्वाद्भगवत्या अप्यगाधत्वं सूचितम् । **खलु** = निश्चयेन **यानि** = **अत्यन्त-गुह्यानि** = मन्दधियामगम्यानि **ते** = तव **नामानि** = भवन्ति **तेभ्यः परेभ्यः** = किञ्चिदधिकेभ्यः विंशतिसहस्रेभ्यो नामभ्यो **नमो** नमस्कारोऽस्तु । एतावद्भिः सर्वैरपि नामधेयैः कृतो नमस्कारो भावभृतां त्वय्येवोपतिष्ठत इति भावार्थसङ्गर्भितेकोनविंशवृत्तार्थः ॥१९॥

भाषा—अब इस एक श्लोक से श्री भगवती के नवकोटि नामो में से कितनेक मुख्य मुख्य नामों की उत्पत्ति कहते हैं । हे त्रिपुरे श्री भगवती ! आईपल्लवितैः = आ तथा ई अक्षर को अन्त में रखकर परस्परयुतैः = परस्पर में मिले हुए द्वित्रिक्रमात् = अक्षरैः = दो दो तथा तीन तीन अक्षरों के अनुक्रम से स्वरादिभिः = तथा स्वरों को आदि में रखने से काद्यैः क्षान्तगतैः = ककार से लेकर क्षकारपर्यन्त वर्णों से जितने नाम उत्पन्न होते हैं अर्थात् सोलह[1] स्वरों को आदि में धरकर पैंतीस व्यञ्जनाक्षरों से जितने नाम उत्पन्न होते हैं, जैसे अकाई, अखाई, अगाई, अघाई, अङाई, आदि अःक्षाई, पर्यन्त १६×३५=५६० पाँचसो साठ नाम हुए । और क्षान्तैः तैः = आ-ई अक्षरों को अन्त में रखकर अन्योन्य में मिले हुए ककार से लेकर क्षकारपर्यन्त पैंतीश[2] व्यञ्जनों से जितने नाम उत्पन्न होते हैं । जैसे ककाई, कखाई, कगाई, कघाई, कङाई लेकर क्षक्षाई पर्यन्त बारह सो पच्चीश ३५×३५=१२२५ नाम हुए । इन नामों के आदि में सस्वरैः = सोलह स्वरों के रखने से जितने नाम उत्पन्न होते हैं, जैसे अककाई, अकखाई आदि लेकर अः अकक्षाई, अःक्षक्षाई पर्यन्त उन्नीस हजार छहसो १२२५×१६=१९६०० नाम हुए । इन नामों में पूर्वोक्त ५६० नाम मिला देने से बीस हजार एकसो साठ १९६००+५६०=२०१६० नाम हुए । सो भैरवपत्नि ! हे परमेश्वरी ! इस रीति के अनुसार खलु = निश्चयरूप से यानि = जितने गुह्यानि = अत्यन्त गुप्त ते = आप के नामानि-भवन्ति = नाम उत्पन्न होते हैं । तेभ्यः = उन पूर्वोक्त परेभ्यः = विंशतिसहस्रेभ्यः = बीस हजार एकसो साठ संख्यावाले आप के नामों नमः = नमस्कार हो । अर्थात् को इन पूर्वोक्त नामों में से कोई भी नाम लेकर जो पुरुष नमस्कार करता है तो वह नमस्कार आप को ही प्राप्त होता है ॥१९॥

१. सोलह स्वर यह है-अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ।
२. पैंतीस व्यञ्जन यह हैं क् ख् ग् घ् ङ् । च् छ् ज् झ् ञ् । ट् ठ् ड् ढ् ण् । त् थ् द ध् न् । प् फ् ब् भ् म् । य् र् ल् व् श् ष् स् ह् । ळ् क्ष् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्ततत्त्वालिङ्गनापुरस्सरं निजस्तुतेः सज्जनश्लाघ्यतामाह-**बोद्धव्येति** ।

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्यास्त्रिपुरेत्यनन्यमनसो यत्राद्यवृत्ते स्फुटम् ।
एकद्वित्रिपदक्रमेण कथितस्तत्पादसङ्ख्याक्षरै-
र्मन्त्रोद्धारविधिर्विशेषसहितः सत्सम्प्रदायान्वितः ॥२०॥

व्याख्या—बुधैः = पण्डितैः **इयम्** = एकोनविंशतिश्लोकमयी **स्तुतिः** = नुतिः **तद्गतं मनः कृत्वा** = प्रणिधानेन भगवतीमयं चित्तं विधाय **निपुणं** = यथा भवति तथा **बोद्धव्या** = सामान्यविशेषोक्तप्रकारेण साधुभङ्ग्या ज्ञातव्या । यतो बहुधा त्रिपुरायाः उद्धाराः सन्ति । तथा च-

यथावस्थितमेवाद्यं द्वितीयं सहकारकम् ।
तृतीयं हंसमारूढं त्रिपुराबीजमुत्तमम् ॥१॥

तेन ऐँ सौः क्लीँ हस्त्रौँ इति सिद्धम् । अन्यच्च पिण्डीभूता त्रिपुरा १, कामत्रिपुरा, २. त्रिपुरभैरवी, ३. वाक्त्रिपुरा, ४. महालक्ष्मी, ५. वह्नित्रिपुरा, ६. मोहिनी, ७. भ्रमरावली, ८. बाला, ९. नन्दा, १०. त्रैलोक्यस्वामिनी, ११. हंसिनी, १२. इति विशेषाम्नायम् अक्षरपूजायां लिखेत् । प्राधान्यं जपाभ्यासस्य न तूच्चारणस्येत्यादि सर्वं निपुणं बोद्धव्यम् । कस्याः स्तुतिरित्याह-**त्रिपुरेति** । **भारत्याः** = त्रिपुरानाम्न्याः सरस्वत्याः । कथम्भूतायाः ? **अनन्यमनसः** = असामान्यचेतस्काया महामायायाः, **यत्र** = यस्यां स्तुतौ **स्फुटं** = प्रकटम् आद्यवृत्ते प्रथमश्लोके **एकद्वित्रिपदक्रमेण** = त्रिभिः पदैः **तत्पादसंख्याक्षरैः** = वर्णत्रयेण वाग्बीजकामबीजशक्तिबीजरूपेण मन्त्रोद्धारविधिः कथितः । किम्भूतः ? **विशेषसहितः** । विशेषाश्च सहसेतिपदेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमवृत्त एव प्रकाशितत्वान्न पुनरुच्यन्ते । पुनर्विशिनष्टि **सत्सम्प्रदायान्वितः** = सम्प्रदायो गुरुपारम्पर्यं यथा त्रिपुराशब्देन चराचरत्रिजगदुत्पत्तिक्षेत्रं त्रिरेखामयी योनिरित्यभिधीयते, अत एवासौ त्रिपुरा-इत्यादौ प्रोक्तम् । ऐकारस्य तदाकारत्वादेव ।

यदि वा प्रकारान्तरैरष्टदलं पद्ममालिख्य कर्णिकायां देव्या मूर्तिं बीजं वा पत्रेषु च लोकपालाष्टकं नागकुलाष्टकं सिद्धयोऽष्टौ, विद्या अष्टौ, सिद्ध्यष्टकं, क्षेत्रपालाष्टकं, यमाष्टकं धर्माष्टकमित्यादि विलिख्य 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः' [1]इति शोषणमोहनसंदीपनतापनोन्मादनपञ्चवर्णपुष्पैः योनिमुद्गरधेनुपाशांकुशादिमुद्रा दशं पूजयेत् । ततो जापस्तत्प्रमाणानुगामि च फलमिदम् । यथा-

लक्षजापे महाविद्यावर्णमालाविभूषितः ।
जाप्यं करोति भूपालः साधकस्य च दासवत् ॥१॥

लक्षद्वयमहाविद्याजप्यमानो महेश्वरः ।
रक्तध्यानान्महामन्त्रः क्षोभयेच्चक्रवर्त्तिनम्[2] ॥२॥

लक्षत्रयेण देवेशो यक्षिणीनां पतिर्भवेत् ।
योगयुक्तो महामन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥३॥

चतुर्लक्षैः सदा जप्तैः पातालं साधकोत्तमः ।
क्षोभयेन्नात्र सन्देहः प्रोच्यते योगिनीमते ॥४॥

पञ्चलक्षैः सदा जप्तैर्निर्गच्छन्ति सुराङ्गनाः ।
पातालं स्फोटयन्त्याशु साधकस्य वशानुगाः ॥५॥

षड्भिर्लक्षैर्महादेवं चिन्तितं सिद्ध्यते नृणाम् ।
तथा जप्तैः सप्तलक्षैर्नरो विद्याधरो भवेत् ॥६॥

अष्टलक्षैस्तथा जप्तैः फलं देवी प्रयच्छति ।
तेन भक्षितमात्रेण कल्पस्थायी भवेन्नरः ॥७॥

नवलक्षैस्तथा जप्तैर्विद्याधरपतिर्भवेत् ।
दशलक्षैः कृतैर्जापैर्वज्रकायो भवेन्नरः ॥८॥

---

१. 'ह्रां ह्रीं क्लीं ब्लूं सः' इति पाठान्तरम् ।

२. "क्षोभयेद्युवतीजनम्" इति कुत्रचित्पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकादशै रुद्रगणो द्वादशैश्च सुरोत्तमः ।
लक्षैस्त्रयोदशैर्वीरो मायासिद्धो भविष्यति ॥९॥

चतुर्दशजपैलक्षैर्देवराजस्य वल्लभः ।
आसने सेवको मन्त्री गीयते देवतादिभिः ॥१०॥

जप्तैः पञ्चदशलैर्क्षर्नारिकेलं प्रयच्छति ।
साधकस्य महादेवी हृष्टा पुष्टा कुलाङ्गना ॥११॥

तेन भक्षितमात्रेण नरो ब्रह्मसमो भवेत् ।
त्रिदशैः पूजितो नित्यं कन्याकोटिशतैस्तथा ॥१२॥

जप्तैः षोडशभिर्लक्षैः साधकस्य सुरेश्वरैः ।
योगाञ्जनं पदं पट्टं कुण्डलानि प्रयच्छति ॥१३॥

लक्षैः सप्तदशैर्जप्तैर्नरो धर्मोपमो भवेत् ।
जप्तैरष्टादशैर्लक्षैर्विष्णुरूपो भवेन्नरः ॥१४॥

एकोनविंशैर्लक्षैस्तु देवी पाशान्प्रयच्छति ।
साधकस्तेन पाशेन बन्धयेत्ससुरासुरान् ॥१५॥

एवं क्रमेण कश्चित्तु कोट्यर्द्धं कुरते जपम् ।
होमयेच्च दशांशेन दुग्धाज्यं गुग्गुलं मधु ॥१६॥

योन्याकारे महाकुण्डे रक्ताभरणभूषितः ।
स मन्त्री विधिसंयुक्तो देवराजो भविष्यति ॥१७॥

कोटिजापे कृते मन्त्री लीयते परमे पदे ।
एवं जापक्रमः प्रोक्तो होमयुक्तो महाफलः ॥१८॥ इत्यादि

गुर्वाम्नायान्वितो युक्तोऽयं महामन्त्रोद्धारो । ज्ञेय इति विंशतितमवृत्तार्थः ॥२०॥

भाषा—"यह ग्रन्थ गूढ़ बीजाक्षर मन्त्रों से सम्मिलित होने के कारण सर्व सज्जनों के लिए मान्य एवं प्रशंसनीय है" ऐसा बताते हुए ग्रन्थकार कहते हैं । बुधैः = विवेकी जनों ने तद्गतं-मनः-कृत्वा = अपने चित्त को श्री भगवती में एकाग्र लगा कर अनन्यमनसः = बड़े उदार चित्तवाली त्रिपुरा-इति-भारत्याः =

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तुति त्रिपुरानामक सरस्वती की स्तुति रूप इयम् = इस लघुस्तव को निपुणम् = सावधानी के साथ बोद्धव्या = जानना चाहिये । कारण कि, यत्र = इस लघुस्तव में स्फुटम् = प्रत्यक्षरूप से आद्यवृत्ते = पहले अर्थात् 'ऐन्द्रस्येव शरासनस्य' इस श्लोक के मध्य एकद्वित्रिपदक्रमेण = पहले दूसरे तीसरे अक्षर पद के अनुक्रम से विशेषसहितः = विशेषता से सहित और सत्सम्प्रदायान्वितः = सद्गुरु के मुखारविन्द से ही जानने योग्य मन्त्रोद्धारविधिः = ऐँ क्लीँ आदि बीजाक्षरमन्त्रों के उद्धार करने की रीति कथितः = कही गई है । अर्थात् श्री भगवती की कृपा से तथा अपने गुरु की कृपा से ही इस श्रीलघुस्तवराज का अतिगूढ़ रहस्यार्थ विदित होता है । श्री भगवती की तथा गुरु की कृपा विना इस लघुस्तवराज का समग्र रहस्य कभी समझ में नहीं आता है ।

अब ग्रन्थान्तरों में कही हुई पूजाविधि तथा मन्त्रजापविधि लिखते हैं आठ पत्तों का एक कमल भूर्जपत्र पर लिखकर उसके मध्य भाग में श्रीत्रिपुरा भगवती की मूर्ति को या पूर्वोक्त बीजमन्त्रों को स्थापित करे । आठों पत्तों पर आठ लोकपालों के नाम, आठ सिद्धियों के नाम और आठ क्षेत्रपाल आदि के नाम स्थापित करे । उस कमल पर 'द्राँ द्रीँक्लीँ ब्लूँ सः' यह अक्षर लिखना, तदन्तर शोषण, मोहन आदि अपने कार्यानुसार श्वेत, रक्त आदि वर्ण के पुष्पों से उस कमल का पूजन करे । योनि, मुद्गर आदि मुद्राओं की साधना करे । पीछे मूलमन्त्र के कार्यानुसार जाप करने से यथोक्त फल प्राप्त होता है । जैसे कि, ग्रन्थान्तरों में लिखा है । जो पुरुष एक लाख मन्त्र जपता है, उसको राजा लोग वश हो जाते हैं ॥१॥ रक्तमूर्ति का ध्यान करता हुआ जो पुरुष दो लाख मन्त्र जपता है तो उस पुरुष को चक्रवर्ति राजा वश हो जाते हैं ॥२॥ तीन लाख जपने से निस्सन्देह यक्षिणियों का पति हो जाता है ॥३॥ चार लाख जपने से पुरुष पाताल को क्षोभित कर देता है ॥४॥ सदा पाँच लाख जपने से साधक पुरुष को अप्सरायें वश हो जाती हैं ॥५॥ छह लाख मन्त्र का जाप करने से मनोवांछित कार्यसिद्धि हो जाती है और सात लाख मन्त्र जपने से साधक पुरुष विद्याधरों का पति हो जाता है ॥६॥ तथा जो पुरुष आठ लाख मन्त्र जपता है उस पुरुष को श्रीभगवती एक फल देती है जिस को खाने से पुरुष कल्पपर्यन्त अमर हो जाता है ॥७॥ और नव लाख मन्त्र जपने से पुरुष विद्याधरों का स्वामी हो जाता है । दशलाख जपने से पुरुष का शरीर वज्र समान हो जाता है ॥८॥ ग्यारह लाख मन्त्र जपने से मनुष्य रुद्रसमान और बारह लाख जपने से मनुष्य इन्द्रसमान हो जाता है । तेरह लाख मन्त्र जपने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधक पुरुष वचन सिद्ध हो जाता है ॥९॥ चौदह लाख मन्त्र जपने से साधक पुरुष देवपूज्य हो जाता है ॥१०॥ पन्द्रह लाख मन्त्र का जपने से साधक पुरुष को श्री भगवती एक नारियल देती है जिसको खाने से पुरुष ब्रह्मा के समान देवपूज्य हो जाता है ॥११-१२॥ सोलह लाख मन्त्र जपने से साधक पुरुष को श्री भगवती एक अञ्जन तथा एक वस्त्र और एक कुण्डल देती हैं ॥१३॥ सत्रह लाख मन्त्र जपने से साधक पुरुष धर्म के समान और अठारह लाख जपने से विष्णु के समान हो जाता है ॥१४॥ उन्नीश लाख मन्त्र का जाप करने से साधक पुरुष को श्री भगवती पाशियें देती हैं जिनसे वह पुरुष देवताओं को तथा दैत्यों को बाँध सकता है ॥१५॥ इस अनुक्रम से जो पुरुष पचास लाख मन्त्र जपता है और दशांश से गुग्गुल, दुग्ध, घृत, मधु आदि का होम करता है तो वह पुरुष इन्द्र पदवी को प्राप्त हो जाता है ॥१६-१७॥ एक कोटि मन्त्र का जाप करने से साधक पुरुष परम पद को प्राप्त हो जाता है, इस प्रकार से उत्तम फल देनेवाली यह होम सहित जाप करने की विधि ग्रन्थान्तरों से उद्धृत करके यहाँ साधक पुरुषों के हितार्थ वर्णन की है । इसका विशेष विस्तार गुरुपरम्परा से जान लेना चाहिये ॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१

स्तुत्युपसंहारे कविर्निजगर्वापहारमाह—**सावद्यमिति** ।

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वानया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति जनो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि ।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठा-
त्त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि ध्रुवम् ॥२१॥

व्याख्या—ननु लघुकविकृतत्वादवज्ञास्पदत्वेन स्तोत्रमिदं कः पठिष्यतीति चित्ते वितर्क्याह-**सावद्यमिति** । इदं स्तोत्रं **सावद्यं** सदोषमस्तु यदि वा **निरवद्यं** = निर्दोषमस्तु, **अनया चिन्तया किं वा** = कोऽत्र परमार्थ इति । **नूनं** = निश्चितं **स जनः इदं स्तोत्रं पठिष्यति** = यस्य जनस्य त्वयि **भक्तिरस्ति** = न तु पाठकाभावः । ननु एतादृग्वैमनस्यञ्चेत्किमर्थं स्तुतिः कृतेति चेत्तत्राह-**दृढमत्यर्थमात्मनि संजायमानं** = घटमानं **लघुत्वं** = बालकत्वं **संचिन्त्यापि** = ज्ञात्वापि **यस्मात्कारणात् हठात्** = बलेन **त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन** = त्वद्भक्तिरसवाचालेन **मयापि ध्रुवं** = निश्चितं स्तोत्रमिदं रचितं कृतम्, न खलु मम भगवतीस्तुतिकरणे शक्तिसमुल्लासः किन्तु व्यक्तकोटिसंटङ्कित-भक्तिसमुद्भूतपरमानन्दरसपरवशेन यथाभावनं मया देवीं स्तुत्वा बालस्वभावसुलभं मुखरत्वमेवाविष्कृतम् । किञ्चान्यद् बालको हि मातुरुत्सङ्गचारी स्वेच्छया लपन्नपि न दूषणीयः प्रत्युत भूषणीयो भवति, तथाहमज्ञानिशिरोमणिरपि जगन्मातरं निजसहजलीलया स्तुवन् सदोषोऽपि नापराधभाजनम्, किन्तु दूषणमुद्धृत्यातुल्य-वात्सल्यसुधाप्रवाहैः प्रीणयित्वा च प्रमाणपदवीमध्यारोपणीयः सकलकल्याणमय्या भवत्येवेति भावार्थसंकलितैकविंशवृत्तार्थः ॥२१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा—यदि कोई पुरुष शङ्का करे कि, यह स्तोत्र लघुकवि का अर्थात् बाल कवि का बनाया होने के कारण विद्वज्जनों को अवज्ञास्पद हो जाएगा और इस स्तोत्र का पठन कौन करेगा ? तो ग्रन्थकार प्रत्युत्तर देते हैं और अपने बनाये हुए ग्रन्थ के अन्त में अपनी निरभिमानता को प्रकट करते हैं कि, हे परमेश्वरी ! इदं स्तोत्रम् = यह मेरा बनाया हुआ स्तोत्र सावद्यम् अस्तु = दूषणों से सहित हो यदि वा = अथवा निरवद्यम् = दूषणों से रहित हो अनया चिन्तया किम् = इस विचार से क्या प्रयोजन है ? किन्तु मेरा कहना यही है कि यस्य = जिस पुरुष की त्वयि = आप के उपर भक्तिः अस्ति = भक्ति है सः जनः = वह पुरुष तो नूनम् = अवश्य इस स्तोत्र का पठिष्यति = पठन करेगा । यदि कोई पुरुष कहे कि ऐसी उदासीनता है तो फिर तुमने यह स्तोत्र क्यों बनाया ? ग्रन्थकार प्रत्युत्तर देते हुए श्रीभगवती से प्रार्थना करते हैं कि, हे श्री भगवती ! आत्मनि संजायमानम् = मेरे अंतःकरण में प्रकट हुए दृढम् = अत्यन्त दृढ लघुत्वम् = लघुपने को अर्थात् बालकपने को सचिन्त्य अपि = विचार कर के भी यस्मात् हठात् = जिस किसी हठ से ध्रुवम् = निश्चय करके त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन = आप की भक्तिरूप ब्रह्मानन्द के समुद्र में निमग्नचित्त होकर मया आप = मैंने भी रचितम् = यह एक स्तोत्र बना दिया है ॥२१॥

भावार्थः—ग्रन्थ कर्त्ता कहते हैं कि, जगदम्बा श्री भगवती की स्तुति करने के लिये तो मेरा सामर्थ्य नहीं है किन्तु श्री भगवती की भक्तिरूप ब्रह्मानन्दरस के पान से परवश होकर मैंने भी अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीभगवती की स्तुतिरूप यह स्तोत्र बनाया है । बालकपने को प्रकट किया है । जैसे अपनी माता की गोद में बैठा हुआ छोटा बालक अपनी इच्छानुसार अपशब्द बोलता है तो भी वह माता उस अपने बालक की उक्तियों से बहुत प्रसन्न होती है, इसी प्रकार मूर्ख जनों में शिरोमणि मैं भी यथामति श्रीजगदम्बा भगवती की स्तुति कर रहा हूँ । यदि किसी स्थान पर मेरी गलती भी हो गई हो तो उस मेरी गलती को श्रीजगदम्बा भगवती सुधार लेगी और सब काल में मेरे ऊपर अनुग्रह रखेगी ॥२१॥

इति श्री मल्लध्वाचार्यविरचितः श्री त्रिपुराभारतीस्तवः समाप्तः ।

व्याख्या—इतीति स्फुटम् । अथ व्याख्याकारकृतश्लोकाः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जातो नवाङ्गीविवृते विधातुरनुक्रमेणाभयदेवसूरिः ।
युगप्रधानो गुणशेखराह्वः सूरीश्वरः सम्प्रति तस्य पट्टे ॥१॥

श्रीसङ्घतिलकसूरिस्तच्चरणाम्भोजसेवनमरालः ।
श्रीसोमतिलकसूरिर्लघुस्तवे व्यधित वृत्तिमिमाम् ॥२॥

श्रीकाम्बोजकुलोत्तंसः स्थूणुर्नाम्नास्ति ठक्कुरः ।
यस्याभ्यर्थनया चक्रे टीकेयं ज्ञानदीपिका ॥३॥

मुनिनन्दगुणक्षोणि (१३९७) मिते विक्रमवत्सरे ।
कृता घृतघटीपुर्यां साचन्द्रार्कं प्रवर्त्तताम् ॥४॥

प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ।
अनुष्टुभाञ्चतुःसप्तत्यग्रा जाता चतुश्शती ॥५॥

इति श्रीसोमतिलकसूरिविरिंचिता
श्रीलघुस्तवराजज्ञानदीपिकानामव्याख्या समाप्ता ॥

भाषा—यह श्रीलघ्वाचार्य का बनाया हुआ श्रीत्रिपुराभारतीस्तव समाप्त हुआ । अथ भाषाटीकाकारश्लोकः-

"कायस्थान्वयकैरवेन्दुसदृशां श्रीलेन्द्रमल्वर्मणां
श्रीमद्हाकिमसहिबेतिपदवीमासेदुषामाज्ञया ॥
भाषाकारि लघुस्तवे सविवृतौ नागौरशाखापुरे
शाके लक्ष्मणसूरिणा रदधृतौ १८३२ चण्डी तया प्रीयताम् ॥१॥

इति श्रीमरुदेशान्तर्गत-योधपुरपत्तनप्रान्तस्थनागौरनगरवास्तव्यप्रधानानाथोपकारकसंस्कृतपाठशालाध्यापक—श्रीमज्जगज्जीवनवंश्य-चातुर्भ्रात्रीय-निरञ्जनिस्वामिश्रीमधुसूदनाचार्यशिष्य-पण्डितलक्ष्मणदासशर्म-निर्मिता श्रीलघुस्तवराजस्य सान्वयभाषाटीका सम्पूर्णा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिपुराभारतीलघुस्तवस्य

पञ्जिकानामविवृतिः

केवलाक्षरशुद्ध्यर्थमर्थमात्रप्रतीतये ।
लघुस्तवे महावृत्तिरुद्धृता ज्ञानतो मया ।

अथ लघुस्तवस्य विवृत्तिरभिव्यज्यते

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्येललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः ॥
एषासौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोः सदाहःस्थिता
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ॥१॥

अक्षरार्थकथनम्-**एषाऽसौ त्रिपुरा त्रिभिः पदैः** = वाक्यैर्वक्ष्यमाणैः ऐँकारप्रभृतिभिः, अथवा **पदैः** = स्थानैः ललाट-शिरो-हृदयरूपैः, **सहसा** = झटिति स्वबलेन वा, **वो** = युष्माकम्, **अघं** = पापं दारिद्र्यं वा मरणं वा छिन्द्यात् । असौ परा त्रिपुरा । इदानीं स्थानत्रितये ध्यानत्रयमाह । किं कुर्वती ? **मध्येललाटं** = ललाटस्य मध्ये, पारे मध्येऽन्तः षष्ठ्या वेत्यव्ययीभावः, भ्रूमध्ये, **ऐन्द्रस्येव** = इन्द्रसम्बन्धिनः **शरासनस्य प्रभामिव** जगद्वश्यार्थमारक्तरूपं **दधती** । तथा **शिरसि** = ब्रह्मप्रदेशे, **अनुष्णगोः** = शीतांशोः सर्वतः प्रसारिणीं **शौक्लीँ** = श्वेतरूपां **कान्तिम्** = ज्योत्स्नामिव प्रतिभोल्लासार्थं **आतन्वती** = विस्तारयन्ती । अनुष्णगौरिवेति पाठे गौरतद्धिताभिधे य इति गणकृतस्यानित्यत्वाददन्तता नास्ति । यथा अनुष्णगुश्चन्द्रः शुक्लां चन्द्रिकां क्षिपति, तथा हृदयकमले उष्णांशोर्भगवतो रवेः सदाऽहःस्थिता सप्रतापा, यद्वा सदाऽहनि स्थिता लक्ष्मीप्राप्त्यर्थं द्युतिरिव । अतश्चेन्द्रचाप-शीतांशु-सूर्याकारधारणात्, ज्योतिर्मयी सारस्वतरूपा च इत्यनेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कामराजबीजं वाङ्मयबीजं चोपन्यस्तम् ।

इदानीं सामान्यविशेषाभ्यां त्रिपुराया मन्त्रोद्धारः प्रतिपाद्यते । वक्ष्यति च **बोद्धव्या निपुणं बुधैरित्यादि** । तत्र एक-द्वि-त्रिपदक्रमेण प्रथमे पादे प्रथमाक्षर ऐँकारः, द्वितीये पादे द्वितीयाक्षरः क्लीँकारः, तृतीये पादे तृतीयाक्षरः सौँकारः । सदा हस्थिता नित्यं हकारे स्थिता ह-सहिता तेन ह्सौँ इति सिद्धम् । अत्र देव्या मन्त्रद्वयमूर्तित्वाद् हृदि विशेषणत्वे बीजाक्षरविशेषणम् । एवं ऐँ क्लीँ सौँ इति सामान्येन तावदुक्तम् । वक्ष्यति च **विशेषसहितः सत्सम्प्रदायान्वित** इति । तेन विशेषो बोद्धव्यः । मन्त्रोद्धारपक्षे सर्वतः सरु इति भिन्नं पदं क्रियाविशेषणम् । सरु यथा भवति एवं क्लीँकारे ज्ञेयः । सह रुणा वर्तत इति । उकारस्योच्चारणत्वेन सम्बन्धो ह्यधस्तनं भागं लक्षयति । तेन अधोभागे रेफः सिद्धः । तेन क्लीँ इति । अतः शिरोध्यानादनन्तरमित्यर्थः । **त्रिभिः पदैः** = वाक्यैः ऐँकारप्रभृतिभिः । **सहसा** = ह्श्च सश्च ह्सौ सह ताभ्यां वर्तते सहसा तेन ह्सै ह्स्क्लीँ ह्स्ह्सौँ इति विशेषसहितः ।

अथ किमेषा त्रिपुरा उत त्रिपुरभैरवी ? । यथोत्तरषट्के त्रिपुरामुद्दिश्य उदाहृतम् तद्यथा—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सम्प्रदायसमन्वितम् ।
त्रैलोक्यडामरं तन्त्रं त्रिपुरावाचकं महत् ॥

पुनस्तत्रैव-

पूर्वोक्तं मन्त्रमालिख्य त्रिपुरावाचकं महत् ।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिपुरायोगमुत्तमम् ॥

त्रिपुरा त्रिपुरेति श्रूयते । पञ्चरात्रे तु तत्त्वसंहितायां तैरेव-बीजाक्षरैस्त्रिपुर-भैरवीयं भणित्वा कथिता । यथा

वाङ्मयं प्रथमं बीजं द्वितीयं कुसुमायुधम् ।
तृतीयं बीजसञ्ज्ञं तु तद्धि सारस्वतं वपुः ॥
एषा देवी मया ख्याता नित्या त्रिपुरभैरवी ॥

अतः संदेहः । अथ उत्तरषट्केऽपि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकाक्षरा मया प्रोक्ता नाम्ना त्रिपुरभैरवी ॥
तथैव मूलविद्या तु नाम्ना त्रिपुरभैरवी ॥

इत्युक्तम्, तदुच्यतामुत्तरं कथमियमिति । **सत्यम्** । बहवो हि अस्या उद्धारप्रकाराः सम्प्रदायाः पूजामार्गाश्च । तथा च नारदीयविशेषसंहितायामुक्तम्-

वेदेषु धर्मशास्त्रेषु पुराणेष्वखिलेष्वपि
सिद्धान्ते पाञ्चरात्रेषु बौद्धे चार्हतके तथा ॥
सुशास्त्रेषु तथाऽन्येषु शंसिता मुनिभिः सुरैः ॥ इत्यादि

तथा - **मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि गुप्तमार्गेण वासवम् ।**
विशेषस्त्ववगन्तव्यो व्याख्यातृगुरुवक्त्रतः ॥

अथ क्वचिन्मन्त्रोद्धारभेदात्, क्वचिदासनभेदात्, क्वचित्सम्प्रदायभेदात्, क्वचित्पूजाभेदात्, क्वचिन्मूर्तिभेदात्, क्वचिद्ध्यानभेदाद् बहुप्रकारा त्रिपुरा चैषा-क्व चित् त्रिपुरभैरवी, क्वचित् त्रिपुरभारती, क्वचित् त्रिपुरसुन्दरी, क्वचित् त्रिपुरललिता, क्वचित् त्रिपुरकामेश्वरी, क्वचिदपरेण नाम्ना क्वचित् अपरैवोच्यते । तथा सामान्य-विशेषाभ्यां त्रिपुरेयमित्युक्तम् । **एषाऽसौ त्रिपुरे**त्यादि ॥१॥

इदानीं प्रथमाक्षरस्य विशेषमाहात्म्यमाह-

या मात्रा त्रपुषीलतातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्द्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥२॥

अहो भगवति ! **तव प्रथमे** वाग्भवबीजे ऐँकाररूपे, **या मात्रा सदा** = नित्यं **स्थिता** । किंभूता ? **त्रपुषीलतातनुलसत्तन्तुस्थितिस्पर्धिनी** = त्रपुषीलता चिर्भटिका-विशेषवल्ली तस्यास्तनुः सूक्ष्मोल्लसत्शोभायमानो यस्तनुः पादप्ररोहस्तस्य स्थितिराकृतिस्तां स्पर्धते, तदनुकारं स्पृशन्तीत्येवंशीला सा तथोक्ता । यैरस्माभिश्चरा-चराणां सृष्टिहेतुर्मुक्तिदानात् सृष्टिरवगता, ते । एवं ज्ञानात् प्रसिद्धा वयं शाक्तेयाऽऽगमविदस्तां मात्रां कुण्डलाकारत्वात् **कुण्डलिनीति** नाम्ना शक्तिं मन्महे । मनु बोधने तुदादिरयम् । किंभूताम् ? **विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमाम्** = विश्वं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिभुवनं तस्य जननव्यापारः कृतिनियोगस्तत्र बद्धोद्यमां कृतोत्साहाम् । अथवा विश्वजनानां त्रिजगल्लोकानाम्, नव्या अदृष्टश्रुतपूर्वाः, अपारा बहवः बद्धा आरब्धा साराश्च उद्यमाः पालनादयो यया सा तथोक्ता ताम् । **इत्थं** = सानुरूपां कुण्डलिनीं शक्तिम्, **ज्ञात्वा** = सम्यग् अवगम्य, **पुरुषा जननीगर्भे अर्भकत्वं न पुनः स्पृशन्ति** = संसारिणो न भवन्ति, मुक्तिमेव प्रतिपद्यन्ते इत्यर्थः ॥२॥

इदानीं प्रथमाक्षरस्य वाग्भवबीजस्य माहात्म्यं प्रतिपादनार्थं पठितसिद्ध-त्वमाह-

दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं
येनाकूतवशादपीह वरदे ! बिन्दुं विनाप्यक्षरम् ।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि ! तरसा जाते तवानुग्रहे
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्राम्बुजात् ॥३॥

अहो **देवि** ! **वरदे** ! विश्वप्रसादकारिणि ! **येन** केनापि विदुषा मूर्खेण वा, **सम्भ्रमकारि** आश्चर्यरूपं वस्तु दिवि तारकाऽप्सरोदर्शनादिकं प्रेक्ष्य, **आकूत-वशात्** अद्भुतरसानुभावात्, **सहसा** = अकस्मात्, **ऐ ऐ** इत्यक्षरमुक्तम्, आश्चर्य-वशात् वीप्सा । तर्हि सबिन्दुर्भविष्यति ऐँकार इत्याह-**बिन्दुं विना अपि** । सानुस्वारो हि ऐँकारः प्रथमं बीजम् । अपि विस्मये । तस्य मुखकुहरात् **सूक्ति-सुधारसद्रवमुचः** सुभाषितामृतरसास्वादस्यन्दिन्यो **वाचो निर्यान्ति** स्वयमुद्भवन्ति । नन्वेवंविधानां वाणीनां कथमुत्पत्तिस्तत्राह-**तस्यापी**त्यादि ॥ हे **देवि** ! **ध्रुवं** = निश्चितं तव **अनुग्रहे प्रसादे = तरसा** = जपं विनाऽपि बलात्कारेण, **तस्य जाते** एव उत्पन्ने एव, स त्वया तदाप्रभृति शिरसि हस्तं दत्त्वा अनुगृहीत इत्यर्थः ॥३॥

इदानीं द्वितीयाक्षरस्य माहात्म्यमाह-

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद् बुधश्चेद् भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्त्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम् ॥४॥

अहो **नित्ये** = शाश्वते ! **तव** = भवत्या, **यद् अपरं** = द्वितीयं काम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजनाम मन्त्राक्षरम्, **निष्कलं** = शुभ्रं क्लीँकाररूपम्, **तत् सारस्वतम्, भुवि कश्चिद्विद्यावान्** वेत्ति । स **विरलो** = न सर्वः कोऽपि । किंभूतम् ? **अपरं** = रकाररहितम् क्लीमिति । निष्कलं कश्च लश्च कलौ निर्गतौ कलौ यस्मात् तत् निष्कलम् । ईकाररूपं यद् बीजं सारस्वतम् । **द्विजाः** = ब्राह्मणाः, **प्रतिपर्वणि, सत्यतपसो** = मुनेराख्यानं = चरितं **कीर्तयन्तः** = पुण्यार्थं पठन्तः सन्तः, **प्रारम्भे** = तदुपक्रमे, **प्रणवास्पदप्रणयितां** = ॐकारस्थाने प्रतिष्ठां नीत्वा प्रापय्य, **स्फुटमुच्चरन्ति** = अधीयन्ते । सत्यतपसो मुनेः परमनिष्ठाप्रकर्षेण नैष्ठिकभावो बभूव । यत् तस्य भगवतो मुनेः दुःसहशरनिकरप्रहारविह्वलं चीत्कुर्वन्तं पलायमानं वराहमालोक्य, तत्क्षणं सङ्क्रान्तयेव तत्पीडया परमकारुण्यात् ईमिति निर्वेदवाक्यं निर्गतम् । तदनन्तरं तत्पृष्ठत एवागतेन व्याधेन पृष्टः यद्-'भगवन् ! शरनिकरप्रहतो वराहः केन वर्त्मना गतः ? मत्कुटुम्बं बुभुक्षया म्रियते, तदाख्याहि ।' तत्रान्तरे यदि दृष्टः कथ्यते, तदा वराहवधपातकं स्यात्, अथ यदन्यदाख्यायते तदा असत्यमुक्तं स्यात्, व्याधकुटुम्बबुभुक्षया पातकमपि दुर्वारमिति प्रतिक्षणं चेतसि चिन्तयतो मुनेः परलोकभीरोर्यत्पूर्वं ई इति पदमुच्चरितं तेनैव सारस्वतबीजोच्चारमात्रेण तुष्टा सरस्वती तद्वदनकमलमवतीर्य सूनृतं वचनमुच्चचार । यथा

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते पश्यति न सा ।
अहो व्याध ! स्वकार्यार्थिन् किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥

तेन सम्प्रदायात् प्रथमं तद्बीजमुच्चार्य तदाख्यानाध्यायं पर्वकाले ब्राह्मणाः पुण्यार्थं पठन्ति ॥४॥

इदानीं तृतीयाक्षरस्य प्रभावमाह-

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधै-
स्तार्त्तीयीकमहं नमामि मनसा तद्बीजमिन्दुप्रभम् ।
अस्त्वौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये
गौःशब्दो गिरि वर्त्तते स नियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

अहं = स्तुतिकर्ता, **तार्त्तीयिकं पदं** तृतीये भवं ह्सौँ इति बीजं **इन्दुप्रभं** चन्द्रधवलं **तन्मनसा नमामि** । किंभूतम् ? अविद्यमानो हो हकारो यस्य तदहं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हकाररहितं सौ इति पदम् । **यत् सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे** स्फूर्तिविधानेऽपि विद्वद्भिः **दृष्टप्रभावम्** । तदुक्तम्-

बीजं दक्षिणकर्णस्थं वाचया च समन्वितम् ।
एतत् सारस्वतं बीजं सद्यो वचनकारकम् ॥

बीजं सकारः, दक्षिणकर्णस्थ औकारः, वाचा विसर्गः सौरिति पदं तु पुनः अस् सकाररहितः चतुर्दशस्वरः, **सरस्वतीमनुगतः** सारस्वतरूपेणावस्थितः, **वो** युष्माकम्, **जाड्याम्बुविच्छित्तये अस्तु** = भवतु । **और्वोऽपि** वडवाग्निरपि, सरस्वत्या नद्याः, समुद्रे क्षिप्तं जलं शोषयतीत्युक्तिलेशः । **गौःशब्दो गिरि** = वाचि **वर्तते** । स गौः शब्दो गं विना गकाररहित औकारमात्रः, यद्वा **योगं विना** = ध्यानमन्तरेण, सिद्धिं ददातीति ॥५॥

इदानीं बीजत्रयस्य विशेषमाह-

एकैकं तव देवि बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तिते
जप्तं वा सफलीकरोति तरसा तं तं समस्तं नृणाम् ॥६॥

हे **देवि** ! **तव अनघं** निर्मलं **बीजम्, नृणां तं तं** = निखिलाभिलाषम्, **तरसा** वेगेन, **सफलीकरोति** = साधयति । कथंभूतं सत् ? **नरैर्यं यं कामं** दुर्लभमभिलाषम्, **येन केनापि विधिना** आगमोक्तविधानेन, यदृच्छया चिन्तितं अक्लेशेन सामान्येन ध्यातम्, **जप्तं** = विधानेन ब्रह्मचर्यादिपूर्वं गणितम् । पुनः किंभूतं बीजम् ? सकलबीजमध्यात् पृथक् । यथा ऐँ क्लीँ ह्सौँ । तथा सव्यञ्जनं हकार-सकारयुक्तम् यथा ह्सौँ ह्स्क्लीँ ह्स्हसौँ । तथा सकार-हकार युक्तम् । यथा स्हैँ स्ह्क्लीँ स्ह्हसौँः । तथा चोक्तं नित्यपद्धतौ-

मंतपयारो पाए सो हयारपुव्वो वि तंत्तमग्गंमि ।
सो वि य सयारपुव्वो विज्जाइभेयकरो होइ ॥

अव्यञ्जनं यथा - ऐ ई औ । तथा **कूटस्थं** पिण्डीताक्षरं यथाक्रममेव । तथा **पृथक्** पृथक् अकूटस्थं विवृताक्षरमेव । तथा **क्रमगतं** विवृतमेव । तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्युत्क्रमात् क्रमाभावाद्वा । यथा ह्सौँ क्लीँ ऐँ । तथा क्लीँ ऐँ ह्सौँ...इत्याद्यष्टसंख्यं स्वयमेवोह्यम् ॥६॥

इदानीं विशेषमन्त्राक्षरमाख्याय सकलं ध्यानविशेषमाह-

वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्त्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम् ।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनीं
ये त्वामम्ब न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥७॥

अहो मातः ! **ये** पुरुषाः, एवंविधां **त्वां** वक्ष्यमाणरूपाम्, **मनसा न शीलयन्ति** = न परिचिन्तयन्ति, **तेषां कुतः कवित्वम्** ? क्व काव्यसन्दर्भप्रतिभा स्यात् । कुतः-अध्यादिभ्यस्तस् वक्तव्यः-इत्यधिकरणे तस्प्रत्ययः । किंभूताम् ? **वामे** पक्षे एकहस्ते पुस्तकधारिणीम्, **द्वितीये** हस्ते अभयदाम् । तथा **दक्षिणे** भागे तृतीये हस्ते **साक्षस्त्रजं** जपमालिकासहिताम् । **चतुर्थहस्ते भक्तेभ्य** इति सम्प्रदाने चतुर्थी, **वरदानपेशलकराम्** । पेशलः स्थूललक्षः बहुव्ययी एवंविधभुजाम् । इत्थं चतुर्भुजकथनम् । तथा **कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम्** । एतयोरुपमानेन श्वेतत्व-सौकुमार्य-महार्घ्यतादिगुणकथनम् । पुनरपि किंभूताम् ? **उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयन-स्निग्धप्रभालोकिनीम्**-उज्जृम्भं = उन्निद्रं यद् अम्बुजं तस्य पत्रं = दलं तद्वत् कान्ते नयने तयोः स्निग्धा = अरुक्षा रक्तप्रभा = कान्तिस्तद्युक्तमालोकयन्तीत्ये-वंशीला सा तथोक्ता, ताम् ॥७॥

इदानीमुदात्तवचनप्रवाहजननं शिरोध्यानमाह-

ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्तं विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजा-
त्तेषां भारति भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्म्मिवत् ॥८॥

अहो **भारति** ! वाग्देवते ! **ये** पुमांस इत्थंभूतां **त्वां ध्यायन्ति** अन्तर्दृष्ट्या अवलोकयन्ति । किंभूताम् ? **मूर्ध्नि स्थिताम् अमृतद्रवैः** = सुधावृष्टिभिः **शिरोऽर्वाक्** ध्यायिनां ब्रह्मप्रदेशं **सिञ्चन्तीं** वर्षन्तीमिव । ननु किंरूपाऽस्तीत्याह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभाम् । अत्र पुण्डरीकशब्देन सामान्यपद्ममात्रमवगम्यते । अन्यथा पुण्डरीकस्य श्वेतत्वात् पाण्डुरशब्दाधिकत्वम् । पाण्डुरं श्वेतवर्णं यत् पुण्डरीकपटलं तद्वत् । स्पष्टा अभिरामा च प्रभा यस्याः सा तथोक्ता, ताम् । तेषां पुंसां मुखकमलकुहरात् **भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मयः, अश्रान्तं** = सातत्येन प्रादुर्भवन्ति । भारत्येव नैर्मल्यात् अविच्छिन्नप्रवाहाच्च । सुरसरिद् = भागीरथी, तस्याः कल्लोला = असंख्योर्मयः, तद्वल्लोलाः = प्रतिवादिसंमोहकरा उर्मयो = निरन्तरवचनोत्कलिकाः, किंभूताः ? **विकटस्फुटाक्षरपदाः** विकटानि = शब्दार्थालङ्कारयुतानि शक्तिव्युत्पत्ति-सहितानि गम्भीरप्रशस्तिसुन्दराणि वा, स्फुटानि = झटित्यर्थप्रतिपादनसमर्थानि अक्षराणि = पदानि यत्र तत् तथोक्ताः ॥८॥

इदानीमङ्गनावश्यार्थं रक्तध्यानमाह-

ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमा-
मुर्वीञ्चापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव ।
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर-
क्लान्तास्त्रस्तकुरङ्गशावकदृशो वश्या भवन्ति स्त्रियः ॥९॥

ये = मनुजाः हंहो भगवति ! आस्तां तावत् चिरकालम्, मुहूर्तमपि **त्वत्तेजसा** = भवत्या रक्ततेजःपुञ्जेन, **इमां द्यां** = आकाशं **सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितामिव,** तथा इमां **उर्वीमपि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव पश्यन्ति** = दिवं पृथ्वीमपि आरक्त-भवत्तेजोभिरापूरितामिव विलोकयन्ति । एकोऽपि इवशब्दो डमरुककलिकावद् द्विधा भिद्यते । किंभूताः ? **अनन्यमनसः** = ध्यानाद् अचलितचित्ताः । ननु तेषां किं फलमित्याह-**तेषा**मित्यादि । **तेषां** = पुंसां **ध्रुवं** = निश्चितं **अनङ्गज्वरक्लान्ताः** = स्मरज्वरतापोड्डामरिताः **कुरङ्गशावकदृशः** = तरुणहरिणलोचनाः **अङ्गनाः** = स्त्रियः **वश्याः**, तदनुशरणत्वात् तच्छरणा एव भवन्ति ॥९॥

इदानीं श्रीजननं ध्यानविशेषमाह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरामाबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि त्वद्गते क्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थिराम् ।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारीभवन्त्यश्चिरं
माद्यत्कुञ्जर-कर्णतालतरलाः स्थैर्यं भजन्ति श्रियः ॥१०॥

अहो स्वामिनि ! **ये** मर्त्याः **क्षणमात्रम**प्येवंविधां भगवतीं **त्वां चेतसि** निश्चलीकृत्य **ध्यायन्ति** । किंभूताम् ? **चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधराम्** = चञ्चन्ति शोभमानानि हिरण्यमयानि कुण्डलाङ्गदानि तानि धारयसीति । तथा **आबद्ध-काञ्चीस्रजं** धृतरसनाकलापाम् । किंभूते चेतसि ? **त्वद्गते** ध्याननिश्चले । ननु तेषां किं फलं स्यादित्याह-**तेषां** = पुरुषाणां **वेश्मसु** = गृहेषु **संपदोऽहरहः स्फारी-भवन्ति** । प्रतिदिनं वर्धमानाः, **चिरं** = बहुकालात्, **विभ्रमात्** त्वत्प्रसादादेरेण स्थिरीभवन्ति । श्रियस्तस्मादन्यत्र न गच्छन्तीत्यर्थः । तर्हि स्वभावादेव निश्चला भविष्यन्ति । किंभूताः ? **माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः** मत्तगजेन्द्रकर्णतालवत् चपला अपि । चञ्चु इत्यादि-दण्डकधातुरनेकार्थत्वाद् धातूनां शोभार्थेऽपि । तथा च माघमहाकाव्ये-'**हेमच्छदच्छायचञ्चच्छिखाग्रः**' ॥१०॥

इदानीं मुक्तिदं ध्यानमाह-

आर्भट्या शशिखण्डमण्डितजटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं
मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं त्वद्रूपसंवित्तये ॥११॥

हंहो भगवति ! स्वामिनि ! ये मानवा इत्थंरूपां भवतीं **आर्भट्या** = अत्यादरेण **ध्यायन्ति** = स्मरन्ति । कथंभूताम् ? **शशिखण्डमण्डितजटाजूटां** = चन्द्रार्धालङ्कृतजटामुकुटम् तथा **नृमुण्डस्रजं** = नरमुण्डमालाधराम् **बन्धूकप्रस-वारुणाम्बरधरां** = बन्धूकजीवकुसुमारुणनिवसनपिहिताम् तथा **प्रेतासनाध्यासिनीं** = शवारूढाम् तथा **चतुर्भुजां** = बाहुचतुष्टयाङ्किताम्, तथा **त्रिनयनां** = लोचनत्रिकविभूषिताम्, तथा **आपीनतुङ्गस्तनीं** = पीवरोन्नतकुचाम्, तथा **मध्ये** =

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विलग्नप्रदेशे, **निम्नवलित्रयाङ्किततनुं** निम्नोदररेखात्रयाङ्कितशरीराम् । ननु तेषां किं फलं स्यादित्याह-**त्वद्रूपसंवित्तये** त्वद्वृत्तोपन्यस्तं यत् त्वदीयं रूपं तस्य संवित्तिः, विद लाभे इत्यस्य रूपम्, प्राप्तिस्तदर्थम् । प्रतिपादितरूपध्यानविशेषावाप्तपरमात्म-शक्तिलक्षणदर्शनात् क्षीणकर्माणो मुक्तिमेव प्रतिपद्यन्ते इत्यर्थः ॥११॥

इदानीं पूर्ववृत्तकथनेन देव्याः प्रसादफलसंपत्तिमाह-

जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निश्शेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजोऽभव-
द्देवि ! त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः ॥१२॥

हंहो भगवति ! **यत्** पुरा **श्रीवत्सराजः** श्रीवत्सानां देशविशेषाणां राजा उदयनो नामा बभूव । तर्हि अनवाप्तप्रतिष्ठो भविष्यतीत्याह-**निःशेषावनि-चक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा** = निश्शेषावनौ समस्तभूमौ चक्रवर्तिपदवीं = सार्वभौमत्वं प्राप्य । तर्हि प्रतापरहितो भविष्यतीत्याह-**प्रतापोन्नतः** = प्रतापाग्निना भस्मीकृतशत्रुः सर्वोत्कृष्टः, अत एव **विद्याधरवृन्दवन्दितपदः** नमद्देवविशेषमण्डलमुकुटकिरण-निकराऽलङ्कृत-चरणारविन्दः । तर्हि पुरा एवंविधो भविष्यतीत्याह-**अल्प-परिच्छदोऽपि** प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तित्रयहीनोऽपि । अनुचितमिदम् । तत् कस्य प्रभाव इत्याह-**सोऽयं प्रसादोदयः** = सोऽयं पूर्वोक्तः सार्वभौमादिरुदयस्तव प्रसादाद-जनिष्ट । ननु प्रसादः कथमभूत् ? इत्याह-**त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः** = तव चरणावेव सौकुमार्यादारक्तत्वाच्च अम्बुजे तयोः प्रणतिर्भक्तिपूजाराधनाद्युपचारः तस्माज्जातः ॥१२॥

इदानीं परमेश्वर्याः पूजनात् फलविशेषमाह-

चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते बिल्वीदलोल्लुण्ठनात्
त्रुट्यत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कितै-
र्जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ॥१३॥

अहो **चण्डि** ! **येषां** = पुरुषाणां हस्ताः, **त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वत्पाद-पद्मपूजार्थम्, बिल्वीदलोल्लुण्ठनात् **त्रुट्यत्कण्टककोटिभिः**-बिल्वीदलानां = तरुविशेष-पत्राणां उल्लुण्ठनेन = अवचयेन **त्रुट्यन्तो** = विच्छिद्यमानाः कण्टककोट्यस्ताभिः समं परिचयं = तत्पाटने नित्याभ्यासं न ययुः । अत्र कोटिशब्देन अग्रनखाः संख्या वोच्यते । **ते** = बुधा एवंविधैः चक्रवर्ति-चिह्ननिवहवाहिभिः करैरुपलक्षिताः **पृथिवीभुजो** = भूपालाः **कथमिव** भवन्ति, अपि तु न कथञ्चित् । इवशब्दोऽत्र वाक्यालङ्कारे । तथा किरातार्जुनीये-

'कथमिव तव सन्ततिर्भवित्री सममृतुभिर्मुनिनावधीरितस्य'

तान्येव सार्वभौमचिह्नान्याह-**दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कि-तैरम्भोजप्रभैश्च** । तथा रघुकाव्ये-

'ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नैः सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम् ॥'१३॥

इदानीं चतुर्वर्णानां पूजाधिकारेण चिन्तितसिद्धिमाह-

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वैक्षवै-,
स्त्वां देवि ! त्रिपुरे ! परापरकलां सन्तर्प्य पूजाविधौ ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां येषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः ॥१४॥

अहो देवि त्रिपुरे ! **येषां** = ब्राह्मणादीनां चतुर्वर्णानाम्, **मनः** = अन्तःकरणं चित्तम्, **यां यां** दुर्लभां सुलभां वा सिद्धिं **प्रार्थयते** अभिलषति । तर्हि ते चलचित्ता भविष्यन्तीत्याह-**स्थिरधियां** त्वद्भक्तिदृढमतीनाम् । ते = विप्रादिवर्णाः, **ध्रुवं** = निश्चितं **तरसा** = वेगेन, **तां तां** पूर्वाभिलषितां अर्थसिद्धिं **प्राप्नुवन्ति** लभन्ते । ननु अन्तरायाः कथं नोत्पद्यन्ते इत्याह-**विघ्नैः** प्रत्यूहव्यूहैरविघ्नीकृताः = त्वत्प्रसादा-दनुपहताः । तमेव वर्णानुक्रमाह-**विप्रा** इत्यादि । विधिवत्पूजनविधौ **विप्राः** ब्राह्मणाः क्षीरेण, **क्षोणीभुजः** क्षत्रियाः आज्येन, **वैश्या** मधुना, तदितरे **शूद्रा** ऐक्षवेण इक्षुरसेन **च त्वां** = भवतीं **सन्तर्पयित्वा** । किंभूताम् ? **परा** उत्कृष्टाम्, तथा **परापरकलां** परतः शक्तिम् ॥१४॥

इदानीं परमैश्वर्या अर्वाचीनपरांचीनावस्थामाह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दानां जननि ! त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति ध्रुवम् ।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा[१] शक्तिः परा गीयसे ॥१५॥

अहो **जननि** ! अर्वाचीने पदे **अत्र भुवने** त्रिजगति, शब्दजननी वाग्भव-बीजरूपत्वात् **वाग्वादिनी**तिरूपनाम पौराणिकैः त्वमुच्यसे । अथ पराचीनावस्थामाह- **ध्रुवं** = निःसन्देहं स्वर्गादौ, **केशव-वासवप्रभृतयोऽपि देवाः, त्वत्तः** सकाशा-दुत्पद्यन्ते । तथा कल्पान्ते प्रलये देवसंहारे, तेऽप्यमी स्वयंभूत्वेन सृष्टिकरणपालन-संहारकत्वेन सिद्धा ब्रह्मादयोऽपि, **यत्र** = त्वयि, **विलीयन्ते** = विलयं गच्छन्ति । संहारं प्राप्नुवन्ति । सा त्वं एवंविधा काचिदविज्ञेयस्वरूपा **शक्तिः परा** = उत्कृष्टा **गीयसे** = मुनिभिरुच्यसे । किंभूता ? **अचिन्त्यरूपगहना** अचिन्त्यं वाग्-मनसोरप्यचिन्तनीयत्वात्, चिन्तया दुर्विज्ञेयं यद्रूपं तेन गहना दुर्बोधा ॥१५॥

इदानीं जगन्मातुः सर्वगत्वं प्रतिपादयन्नाह-

देवानां त्रितयी त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः ।
यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गादिकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥१६॥

देवानां हरि-हर-ब्रह्मरूपाणां **त्रितयम्;** तथा **हुतभुजां** गार्हपत्याहव-नीयदक्षिणाग्नीनां त्रितयम्, शक्तीनां ब्राह्मणी-वैष्णवी-माहेश्वरीणाम्, इच्छा-ज्ञान-क्रियाणाम्, प्रभुमन्त्रोत्साहरूपाणां च त्रयम्, तथा त्रिस्वरा उदात्तानुदात्त-समाहाररूपलक्षणाः, अकार-उकार-बिन्दुरूपा वा तेषां त्रयम्, तथा **त्रैलोक्यं** त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्, भेषजादित्वात् स्वार्थे यण् । मूलाधिष्ठानमणिपूरक इति एको लोकः, अनाहतनिरोधविशुद्धिरिति द्वितीयो लोकः, आज्ञाशीर्षब्रह्मस्थानमिति तृतीयो लोकः, एषां त्रयम्, तथा **त्रिपदी** गायत्री, गङ्गा, विष्णुपदत्रयं वा । आदि-कान्तं खादिदान्तं धादि-क्षान्तं सप्तदशभिरक्षरैः पदं भवति । भूर्भुवःस्वःरूपाणां त्रयम् । तथा **त्रिपुष्करं** = त्रीणि पुष्कराणि हृदय-भ्रूमध्य-शिरःपद्मानां त्रयम्, तीर्थविशेषो वा । इडा पिंगला

१. 'गहना' इति पञ्जिकाकृत्सम्मतः पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुषुम्णा वा तासां त्रयम्, **त्रिब्रह्म** वेदत्रयम् । हृद्-व्योमद्वादशान्तः-ब्रह्मरन्ध्रान्तश्च । **तथा वर्णास्त्रयः** ब्राह्मणादयः । वाग्भव-कामराज-शक्तिबीजानि तेषां त्रयम् । अन्यदपि त्रिभुवने **त्रिवर्गादिकम्**-त्रिवर्गा धर्मार्थकामरूपाः । **आदि**-शब्देन रति-प्रीति-**मनोभवाः** । दूतीत्रयम्, पीठत्रयम्, मन्त्रत्रयम्, वृक्षत्रयम्, समुद्रत्रयम्, देवीत्रयम्, सिद्धित्रयम्, ध्यानधारणासमाधित्रयम्, नादबिन्दुकलात्रयम्, उदय-मध्यसन्ध्यात्रयम्, भुवनत्रयम्-इत्यादि अन्यदपि **यत्त्रिधा नियमितं वस्तु** च विद्यते **तत्** समस्तं ज्ञानादि **भगवति ! त्रिपुरेति नाम अन्वेति** अनुगच्छति । अन्वाकारो यावत्त्रीणि पुरणि भूर् भुवः स्वः, त्रीणि रूपाणि वाग्भव-कामराज-शक्तिबीजानि, हृद्-भ्रूमध्य-शिरोरूपाणि वा यस्याः सा तथोक्ता । पूर्वं जगज्जननि त्रिधा स्थितं तदर्थं नाम । पश्चाद्देवादीनां पूर्वोपन्यस्तानां त्रितयानीति भावः ॥१६॥

इदानीं स्मरणमात्रेण विपदुत्तारमाह-

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणमुखे क्षेमङ्करीमध्वनि
क्रव्यादद्विपसर्पभाजि शबरीं कान्तारदुर्गे गिरौ ।
भूतप्रेतपिशाचजृम्भकभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्ताराञ्च तोयप्लवे ॥१७॥

एतेषु वक्ष्यमाणस्थानेषु मानवा **विपदस्तरन्ति** आपदो विलङ्घयन्ति । किं कृत्वा ? **राजकुले** राजभवने **'लक्ष्मीं'** स्मृत्वा, तथा **रणमुखे** रणसङ्ग्रामे सङ्ग्रामसंकटे **'जयां'** नाम त्वाम्, तथा **अध्वनि** मार्गे **'क्षेमंकरीं'** नाम त्वाम्, तर्हि मार्गः सौम्य भविष्यतीत्याह-**क्रव्यादद्विपसर्पभाजि** = क्रव्यादा = राक्षसाः द्विपाः = वनकरिणः सर्पाः = अजगरादयः तान् भजते तस्मिन् इति, तथा **कान्तारदुर्गे** विपिनेऽपि, **गिरौ** = पर्वतवलये **'शबरीं'** नाम त्वाम्, **भूत-प्रेत-पिशाच-जृम्भकभये** भूत-प्रेत-पिशाचजृम्भका देवयोनिविशेषाः तेभ्यस्त्रासे सति **'महाभैरवीं'** नाम त्वाम्, **स्मृत्वा** = विचिन्त्य सर्वत्रापि योज्यम् । तथा **व्यामोहे** = बुद्धिविप्लवे सति **'त्रिपुरां'** नाम त्वाम्, तथा **तोयविप्लवे 'तारां'** नाम त्वाम् । एवं स्मृत्वा राजभुवनादिषु लक्ष्मी-प्रभृतीनां त्वदङ्गानां अधिष्ठातृदेवीनां नाममात्रस्मरणेन विपदामपनयनमुचितम् ॥१७॥

इदानीं परमेश्वर्याः प्रसिद्धानि कार्यारम्भसाधकानि नामान्याह कविः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥१८॥

मायादीनि नामानि प्रसिद्धानि स्थानक्रियाचरितमहिमोद्भूतानि । तथा त्वं **माया** परमात्मनः सहचरीत्यसि । तथा **कुण्डलिनी** अपवर्गदायिनी इत्यसि । तथा **क्रिया** सृष्टिपालनसंहाररूपा इत्यसि । तथा **मधुमती** या परमात्मनो ध्यानाग्निना प्रदग्धकर्मणो मुक्तिं प्रति जिगमिषोः संसारविषयभोगप्रदर्शिनी परमेश्वरविप्रलम्भिका त्वमसीत्यादि-षूह्यम्[१] ॥१८॥

इदानीं परमेश्वर्या आगमोक्तनामान्याह-

आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमादक्षरैः
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः ।
नामानि त्रिपुरे भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते
तेभ्यो भैरवपत्नि ! विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥१९॥

---

१. अत्र प्रत्यन्तरे पुनरेतदधिकं पठ्यते-'**काली** मातृणां मध्ये । अथवा मुहूर्तिनी काली कलाबहुमितत्वात् । मालिनी आगमभेदेन । **मातङ्गी** शिवागमभेदेन । **विजया जया** तथैव । **भगवती** ज्ञानवती । मतान्तरे वा प्रसिद्धा कुब्जिका । **देवी** सर्वदेवेषु शक्तिरूपा । **शिवा** गौरी । **शाम्भवी** ब्राह्मी सरस्वती वा ।

शक्तिरूपं वदन्त्येके शिवरूपमथापरे ।
संयोगं च तयोरन्ये विवादा बहवो मताः ॥

शङ्करवल्लभा सर्वेषु रूपेषु भगवान् विमुक्तः(?) । **त्रिनयना** त्र्यक्षा । अथवा त्रिमार्गा त्रिप्रकारा । **वाग्वादिनी** सर्वदेवेषु प्रोच्चारणीया । **भैरवी** भैरवरूपधारिणी दर्शनेन मतान्तरेण वा । ह्रींकारी ह्रींकारभावा । सा **त्रिपुरा** भक्तानां धर्मार्थकामान् पूरयतीति **परापरमयी** वेदाङ्गप्रसिद्धा दर्शनभवा रम्या । **माता** जननी । **कुमारी** अपरिणीता **त्वमसि** । एतानि चतुर्विंशति नामानि स्मृत्वा, तथा पूर्वोक्तनामानि स्मृत्वा विपदस्तरन्ति ।

एते मन्त्रा मया प्रोक्ता आगमश्च स्वनामभिः ।
एतेषां स्मरणं कुर्वन्न कृच्छ्रेष्ववसीदति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहो **भैरवपत्नि** ! मातः ! त्रिपुरे ! **यानि** तव **अत्यन्तगुह्यानि** अतिदुर्बोधानि नामानि वर्तन्ते । कैः ? **अक्षरैः** वर्णैः किंभूतैः वर्णैः ? **काद्यैः** कृत्वा । किंभूतैः काद्यैः ? **क्षान्तगतैः, स्वरादिभिः, अथ तैरक्षरैः, क्षान्तैः सस्वरैः,** पुनः किंभूतैः ? **आ ई पल्लवितैः परस्परयुतैः =** परस्परगुम्फितैः आईशब्दान्तयोजितैः । तद्यथा-अकाई, अखाई, अगाई इत्यादि अक्षाई यावत् । आकाई, आखाई, आगाई, आघाई इत्यादि आक्षाई यावत् । इकाई, इखाई, इगाई, इघाई इत्यादि इक्षाई यावत् इत्यादि षोडशस्वरैः आदिभूतैः काद्यैः क्षान्तगतैः अक्षरैर्नामानि पुनरावृत्त्योच्चारेण षष्ठ्यधिकपञ्चशतानि भवन्ति । अथ क्षान्तगतैः सस्वरैः काद्यैः, यथा क का कि की कु कू कृ क्कृ क्लृ क्लृ के कै को कौ कं कः । एवं सस्वरककादीनि क्षान्तानि यावत् । यथा ककाई, कखाई, कगाई, कघाई इत्यादि कक्षाई यावत् । काकाई, काखाई, कागाई, काघाई इत्यादि काक्षाई यावत् । किकाई, किखाई, किगाई, किघाई इत्यादि किक्षाई यावत् । कीकाई, कीखाई, कीगाई, कीघाई इत्यादि कीक्षाई यावत् । एभिः प्रकारैः षोडशस्वरैः परस्परयुतैस्तैरक्षरैरावृत्त्या एकोनविंशतिसहस्राणि षट्शताऽधिकानि अभियुक्तैर्गणनया ज्ञातव्यानि । षोडशभिः पंचत्रिंशता गुणने ५६०, तेषामपि पंचत्रिंशता गुणने १९६००, पश्चात् ५६० मीलने २०१६०, एकराशौ विंशतिसहस्राणि षष्ट्यधिकशतोत्तराणि भवन्तीत्यत्र । अत एवोक्तं **विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो**ऽधिकेभ्य इत्यर्थः ।

पुनरेतेषामुत्तरषट्के दीर्घैः स्वरैरष्टभिः क्षकारात्प्रतिलोमैः वर्णैः लकारान्तैरष्टभिः **'क्षळ्हसषशवल'**रूपैः कियन्त्येव नामानि कथितानि । यथा आक्षाई ईक्षाई ऊक्षाई ऋक्षाई लृक्षाई ऐक्षाई औक्षाई अःक्षाई इत्यष्टौ । आळाई ईळाई ऊळाई ऋळाई लृळाई ऐळाई औळाई अःळाई इत्यष्टौ । आहाई ईहाई ऊहाई ऋहाई लृहाई ऐहाई औहाई अःहाई इत्यष्टौ । आसाई ईसाई ऊसाई ऋसाई लृसाई ऐसाई औसाई अःसाई इत्यष्टौ । आषाई ईषाई ऊषाई ऋषाई लृषाई ऐषाई औषाई अःषाई इत्यष्टौ । आशाई ईशाई ऊशाई ऋशाई लृशाई ऐशाई औशाई अःशाई इत्यष्टौ । आवाई ईवाई ऊवाई ऋवाई लृवाई ऐवाई औवाई अःवाई इत्यष्टौ । आलाई ईलाई ऊलाई ऋलाई लृलाई ऐलाई औलाई अःलाई इत्यष्टौ । एवमष्टाष्टकविधानेन चतुःषष्टि नामानि, एषा समूला विद्येति । एभ्यस्तव गुह्यनामभ्यः युगपन्नमस्कारो भवतु ॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदानीं सामान्यविशेषक्रमोत्क्रमप्रकारेण बहुप्रकारं मन्त्रोद्धारमाह-

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्यास्त्रिपुरेत्यनन्यमनसो यत्राद्यवृत्ते स्फुटम् ।
एकद्वित्रिपदक्रमेण कथितस्तत्पादसङ्ख्याक्षरै-
र्मन्त्रोद्धारविधिर्विशेषसहितः सत्सम्प्रदायान्वितः ॥२०॥

बुधैर्विद्वद्भिः त्रिपुरेति नाम्न्या भारत्याः सरस्वत्याः **इयं स्तुतिर्**लघुस्तवरूपा **निपुणं** = अन्तर्दृष्टिकरणेन **बोद्धव्या** = अवगन्तव्या । किं कृत्वा ? **तद्गतं** = तदेकाग्रं **मनः कृत्वा** = चित्तं विधाय बोद्धव्या । केन ? **अनन्यमनसा** स्थिरचित्तेन । तदेवाह-**यत्रेत्यादि** यत्राद्ये प्रथमे पदे प्रथमपदं ऐँकारः, द्वितीये द्वितीयपदं क्लीँकारः, तथा तृतीयपदे तृतीयपदं ह्सौँकारः । तथा **विशेषसहितः** इन्द्रायुधप्रभं ध्यानं ललाटमध्ये, शुक्लज्योतिर्ध्यानं शिरसि, सूर्यप्रभातुल्यं ध्यानं हृदये, पूर्वप्रतिपादितमेव । तथा **सत्सम्प्रदायान्वितः** क्वचित् सकार-हकार-रेफयुतः, क्वचिद् एकाक्षरः, क्वचित् सव्यञ्जनः, क्वचित् कूटस्थः, क्वचिदकूटस्थः, क्वचित् पृथक्, क्वचिदपृथक्, क्वचित् क्रमस्थः, क्वचिद् व्युत्क्रमस्थः एवंप्रकारेण सम्प्रदायान्वितः । तथा चोक्तम् उत्तरषट्केऽपि-

जीवासनगतं प्राणं कूटं माहेश्वरं पुनः । इति ।

जीवः सकारः, प्राणो हकारः । आसनं क्वचिदधस्ताद्भवति, क्वचिदुपरिष्टादपि स्यात् । तथा

कूटं तु मध्यमं शृङ्गं शक्तिबीजसमन्वितम् ।

तेन कामराजस्य सकारपूर्वकत्वं सिद्धम् । तदित्थमुद्धारे यादृशा वर्णाः सिद्धास्तादृशा एव एते वर्णा विण्र्यस्ताः बोद्धव्याः । अत उद्धारे हि बीजाक्षरपूजाविधानेन ध्यान-लिपि-बिम्बस्य प्राधान्यम् । जपाभ्यासेन तदुद्धारस्तदिदं सारस्वतम् । तथा आक्षाई आळाई आहाई आसाई आषाई आशाई आलाई आवाई स्वतः सिद्धमेवेति लिपिस्थम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपरिस्थं यत् स्तोत्रस्य, तथा उच्चरतामधः ।
अधःस्थमक्षरं यत् स्यात्, तत् स्यादुपरि जल्पताम् ॥ इति ॥[१]

---

१. [प्रत्यन्तरेऽत्र कियानधिकः पाठ उपलभ्यते । यथा-'**सत्संप्रदायान्वित** इति त्रिपुराशब्देन समस्तवाङ्मय-चराचरजगत्-त्रिभुवनोत्पत्तिः एकाराक्षररूपा, क्षेत्रं त्रिरेखामयी योनिरभिधीयते । तथा च '**एषाऽसौ त्रिपुरा**' इति जल्पता एकारे योन्याकारत्वेन दर्शितः । तदेषां **देवानां त्रितय**मित्यादिना ध्यानेन पूजनीया । श्रीखण्डरसादिना यथावदभिलिख्य उपासनीया बोद्धव्या । इत्येष एव उपासनाविधिः ।

अथ प्रकारान्तरम्-अष्टदलपद्ममालिख्य कर्णिकायां देवी, पत्रेषु अष्टवर्गा मातृका, तस्यामेवाष्टौ लोकपालाः, अष्टौ दिशः, अष्टौ नागकुलानि, आणिमाद्यष्टकम्, विद्याषकम्, कामाष्टकम्, सिद्धाष्टकम्, पीठाष्टकम्, योगिन्यष्टकम्, भैरवाष्टकम्, क्षेत्रपालाष्टकम्, समयाष्टकम्, धर्माष्टकम्, योगाष्टकम्, पूजाष्टकम्, यत्किंचिद् अष्टकं तत्सर्वं मातृकाष्टकवर्गकण्ठलग्नसंलीनं ज्ञातव्यम् इति । इष्टार्थिनः कामार्थिनः कवित्वार्थिनः पूजयेयुः । सौभाग्यविभ्रमोर्जितराज्यैश्वर्यार्थिनस्तु कर्णिकायां परस्परसम्बन्धोद्ग्रन्थिस्थितयोनिद्वयकोणान्तराले योनिपतितरेखात्रयनिर्मितोर्ध्वमुखतृतीययोनिसंस्थाने क्रमेण नवयोनिचक्रमालिख्य, यथापूर्वमध्ययोन्यन्तरालभूमौ 'परेभ्यो गुरुपदेभ्यो नमः । अपरेभ्यो गुरुपदेभ्यो नमः । परापरेभ्यो गुरुपदेभ्यो नमः ।' इति गुरुपङ्क्तिं प्रपूज्य, योनिमध्ये उड्डीयानम्, दक्षिणकोणे जालन्धरम्, वामकोणे पूर्णगिरिपीठम्, पश्चिमकोणे कामरूपपीठम्-इति पीठचतुष्टयं संपूज्य, मध्ये ह्सौरिति सदाशिवमभ्यर्च्य, देवीं धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य-वरदां इति पञ्चकं देव्या मूर्ध्नि पादावधि विनस्य पूजयित्वा 'हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वोषट्, कवचाय हुं, नेत्रत्रयाय वषट्, अस्त्राय फट् ।' इति षडङ्गान्यङ्गेषु विन्यस्य पूजियत्वा, एतान्येव योगाङ्गानि देव्याः सन्निधौ बहिः पूर्वादितः अस्त्रं कोणेषु नेत्रमग्रतः पूजयेत् । ततो 'द्रौं द्रीं क्लीं ब्लूँ सः'-इति । 'शोषण-मोहन-सन्दीपन-उन्मादन-तापनम्' इति बाणपञ्चकम्, मध्यम-पश्चिमयोन्यन्तरालभूमौ पूजयित्वा, ततो भगा सुभगा भगमालिनी भगसर्पिणी-इति पूर्वादियोनिचतुष्के, अनङ्गा अनङ्गकुसुमा अनङ्गमेखला अनङ्गमदना-इति आग्नेयादिचतुष्के, ऐंकारं प्रणवं कृत्वा, नमोऽन्तं प्रपूज्य, योनिमुद्रां दर्शयित्वा, बहिः पत्रेषु पूजयेत् ।

यदि वा समस्तजनप्रसिद्धक्रमायातमार्गेण ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही ऐन्द्री चामुण्डा चण्डिका । इति ।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तश्च भैरवः ।
कपालभीषणश्चैव संहारश्चाष्टमः स्मृतः ॥

इति द्वौ द्वौ एकत्र पत्रे संपूजयेदिति ॥२०॥]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदानीं एतत्स्तोत्रस्य पाठमात्रे माहात्म्यमाह-

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वानया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति जनो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि ।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठा-
त्त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि ध्रुवम् ॥२१॥

यतो **यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं** हठात्, **एतत् स्तोत्रं सावद्यं** दूष्यं **निरवद्यमदूष्यं वा अस्तु । अनया** दूष्यादूष्यस्य स्तवस्य **चिन्तया** वा **किं** कार्यं न किमपीत्यर्थः । अहो विश्वस्वामिनि ! **यस्य** कस्यापि **जनस्य त्वयि** विषये **भक्तिरस्ति** परमभावो विद्यते, स यतो निश्चितमिदं पूर्वोपन्यस्तं पाठमात्रेणोच्चारयिष्यति । पूजाध्यानादिक्रिया तावत् परतोऽस्तु । **तस्यापि** चिन्तितार्थप्राप्तिर्भविष्यतीत्यर्थः । इदानीं कविः स्वभणितं दृष्टान्तोपन्यासेन दृढयति-**यस्मात्** कारणात् **ध्रुवं** = निश्चितं **मया** = मूर्खेणापि, एतेन अबोद्धव्यकथनम्, मया स्तवनमिदं गुम्फितम् । तर्हि सुबोधं भविष्यतीत्याह- **त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन,** किं कृत्वा ? **हठात्** = बलात्कारेण **सञ्जायमानं** विस्फुरद् आत्मनि विषये **दृढं** दुर्निवारं **लघुत्वं** सारस्वतं स्फुरितं सञ्चिन्त्य इति ॥२१॥

इति लघ्वाचार्यविरचितस्य त्रिपुराभारतीस्तवस्य पञ्जिका सम्पूर्णा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्टं प्रथमम्

॥ श्री गौतमाय नमः ॥

॥ श्री बालात्रिपुरायै नमः ॥

'ॐ' अस्य श्रीलघुस्तवराज मन्त्रस्य श्री लघ्वाचार्य ऋषिः शार्दूल-विक्रीडितम् छन्दः । श्री बालात्रिपुरा देवता । ऐँ बीजं । सौँ शक्तिः । क्लीँ कीलकं । श्री बालात्रिपुरा मत्यर्थे धर्मार्थकाममोक्षफलप्रात्यर्थं जपे विनियोगः ॥

श्री लघ्वाचार्यऋषये नमः शिरसि । शार्दूलविक्रीडितछन्दसे नमः मुखे । श्रीबालात्रिपुरादेवतायै नमः हृदि । ऐँ बीजाय नमः गुह्ये । सौँ शक्तये नमः पादयोः । क्लीँ कीलकाय नमः सर्वांगे ।

ऐँ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । क्लीँ तर्जनीभ्यां नमः । सौँ मध्यमाभ्यां नमः । ऐँ अनामिकाभ्यां नमः । क्लीँ कनिष्ठिकाभ्यां नमः । सौँ करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अथ हृदयादिन्यासः । ऐँ हृदयाय नमः । क्लीँ शिरसे स्वाहा । सौँ शिखायै वषट् । ऐँ कवचाय हुँ । क्लीँ नेटत्राय वौषट् । सौँ अस्त्राय फट् ।

अथ ध्यानम् ।

अरुणकिरणजालै रंजिता सावकाशा विधृतजपवटीका पुस्तकाभीतिहस्ता ।
इतरकरवराढ्या फुल्लकल्हारसंस्था विलसतु हृदि बाला नित्यकल्याणशीला ॥

इति ध्यात्वा ॐ श्रीँ ऐन्द्रस्येत्यादि पठनीयम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्टं द्वितीयम्

अत्र लघुस्तवे एकविंशतिः काव्यानि तेषां मन्त्रविधानं लिख्यते ।

॥ ॐ ऐँ ह्रां ह्रीं ह्रूँ नमः ॥

ऐँद्रस्येव० ॥१॥ अस्य मन्त्रः **'श्रीँ क्लीँ ईश्वर्यै नमः'** त्रिकालजापात् प्रभुता ।

या मात्रा० ॥२॥ **'श्री वाङ्मयै नमः'** त्रिकालजापात् पठनसिद्धिर्भवति ।

दृष्ट्वा संभ्रम० ॥३॥.....**स्यैं वः क्रौँ नमः'** त्रिकालजापात् जगद्वश्यं भवति ।

यन्नित्ये तव० ॥४॥ **'ह्रँ वः सरस्वत्यै नमः'** पाठमन्त्रोऽयम् ।

यत्सद्यो वचसां० ॥५॥ **'योगिन्यै नमः'** सर्वापदाहरणम् ।

एकैकं तव० ॥६॥ **'ह्रँ धारकस्य सौभाग्यं कुरु कुरु स्वाहा'** सौभाग्यमन्त्रः ।

वामे पुस्तक० ॥७॥ **'धरण्यै नमः सौभाग्यं कुरु कुरु स्वाहा ।'** विशेषसौभाग्यमन्त्रः ।

ये त्वां पाण्डुर० ॥८॥ **'ऐँ क्लीँ श्रीँ धनं कुरु कुरु स्वाहा ।'** जापात् धनवान् भवति ।

ये सिन्दूर० ॥९॥ **'ह्रँ ह्रां ह्रीं ह्रः पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा ।'** त्रिकालजापात् पुत्रप्राप्तिर्भवति ।

चञ्चत्काञ्चन० ॥१०॥ **'ह्रँ ह्रीं क्लीँ महालक्ष्म्यै नमः, जयं कुरु कुरु स्वाहा'** त्रिकालजापात् सर्वत्र जयो भवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्भट्या० ॥११॥ **'ऐं क्लीँ नमः'** त्रिकालजापात् कर्मक्षयो भवति, अशुभात् शुभं भवति ।

जातोऽप्यल्प० ॥१२॥ **'ब्लूँ द्रीँ नमः'** त्रिकालजापात् राज्यप्राप्तिर्भवति ।

चण्डि त्वच्चरणां० ॥१३॥ **'ह्सौँ नमः'** त्रिकालजापात् महाराजाधिराजत्वं भवति ।

विप्राः क्षोणि० ॥१४॥ **'ह्रीँ वाङ्मय्यै नमः'** त्रिकालजापात् सर्वसमीहित-सिद्धिर्भवति ।

शब्दानां जननी० ॥१५॥ **'ह्रीँ श्रीँ भारत्यै नमः'** वचनसिद्धिर्भवति ।

देवानां त्रितयं० ॥१६॥ **'ह्रीँ सरस्वत्यै नमः'** जापात् विद्याप्राप्तिमन्त्रः ।

लक्ष्मीं राजकुले० ॥१७॥ **'ह्रीँ ह्रीँ श्रीँ शारदायै नमः'** चतुर्दशविद्याप्राप्तिः ।

माया कुण्डलिनी० ॥१८॥ **'ह्रीँ हंसवाहिन्यै नमः'** शारदा वरं ददाति ।

आईपल्लवितै० ॥१९॥ **'ह्रीँ जगन्मात्रे नमः'** त्रिकालजापात् शारदा संतोषवती भवति ।

बोद्धव्या निपुणं० ॥२०॥ **'ह्रीँ भगवत्यै महावीर्यायै नमः, धारकस्य पुत्रवृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा'** त्रिकालजापात् परिवारवृद्धिः ।

सावद्यं निरवद्य० ॥२१॥ **'ह्रीँ ऐं ह्रीँ ऐं क्लीँ लक्ष्मीं कुरु कुरु स्वाहा'** त्रिकालजापात् धनाढ्यता भवति ।

इति लघ्वाचार्यविरचित-श्रीत्रिपुरास्तोत्रमन्त्रविधानं सम्पूर्णम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्टं तृतीयम्

॥ अकारादिक्रमः ॥

१.	आ ई पल्लवितैः परस्परयुतैः	१९
२.	आर्भट्या शशिखण्डमण्डितजटा	११
३.	एकैकं तव देवि ! बीजमनघं	६
४.	ऐंद्रस्येव शरासनस्य दधती	१
५.	चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरां	१०
६.	चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते	१३
७.	जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभृतां	१२
८.	दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा	३
९.	देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां	१६
१०.	बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं	२०
११.	माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती	१८
१२.	यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे	५
१३.	यन्नित्ये तव कामराजमपरं	४
१४.	या मात्रा त्रपुषीलतातनुलसत्	२
१५.	ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीकपटल	८
१६.	ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां	९
१७.	लक्ष्मीं राजकुले जयां रणमुखे	१७
१८.	वामे पुस्तकधारिणीमभयदां	७
१९.	विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे	१४
२०.	शब्दानां जननी त्वमत्रभुवने	१५
२१.	सावद्यं निरवद्यमस्तु	२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन प्रकाशन

साहित्य-सूची

१) आजनो नियम (पांचवी आवृत्ति)
२) स्तुति सरिता (चौथी आवृत्ति)
३) मरणं मंगलं मम (दुसरी आवृत्ति)
४) फूलमां फोर्या राम (दुसरी आवृत्ति)
५) आचारोपदेश (हिन्दी अनुवाद)
६) पूनाथी कराड सुधीनां प्रवचनो
७) रत्नाकरावतारिका (संस्कृत)
८) नरनारायणानन्दमहाकाव्यम् (संस्कृत)
९) झाकळना सूरज
१०) श्रावकधर्मविधिप्रकरणम् (संस्कृत)
११) षड्दर्शन समुच्चय (संस्कृत - अनुवाद)
१२) जागो रे, माबाप (हिन्दी)
१३) पातंजलयोग दर्शनम् - सटीकम् (संस्कृत)
१४) स्याद्वादमञ्जरी (संस्कृत)
१५) कारिकावली (संस्कृत)
१६) रामचंद्रं नमामि
१७) गुणानुवाद प्रवचन
१८) नयामृतम् (संस्कृत)
१९) काव्यानुशासनम् - सटीकम् (संस्कृत)
२०) समरादित्यसंक्षेपः (संस्कृत)
२१) षड्दर्शन समुच्चय - सटिकम् (संस्कृत)
२२) साधु तो चलता भला
२३) प्रभु ! क्यारे कृपा करशो
२४) फूल नहि तो पाखडी
२५) सुरसुंदरीचरियं (संस्कृत)
२६) त्रिपुराभारतीस्तवः (संस्कृत)

आगामी साहित्य

२७) योगदृष्टि समुच्चय (संस्कृत)
२८) बंधशतक - वृत्ति (संस्कृत)
२९) मोतीओ बांधी पाळ
३०) पर्व प्रवचन (दुसरी आवृत्ति)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन प्रकाशन

आज्ञाधर्मथी अनुबद्ध अने शब्दश्रीथी समृद्ध साहित्यनुं प्रकाशन करवानो
मुद्रालेख धरावतां प्रवचन प्रकाशनने समुदार सहयोग आपनारा

प्रवचन स्तंभ

श्री हेमतलाल छगनलाल महेता परिवार - कलकत्ता
श्रीमती प्रभाबेन नंदलाल शेठ - मुंबई
युवा संस्कार ग्रूप - नागपुर

प्रवचन प्रेमी

श्री सुधीरभाई के. भणशाळी - कलकत्ता
श्री कुमारपाळ दिनेशकुमार समदडिया - मंचर
श्री प्रकाश बाबुलाल, देवेन्द्र, पराग, प्रितम शाह - मंचर

प्रवचन भक्त

श्री चंदुलाल नेमचंद महेता - कलकत्ता
श्री छोटालाल देवचंद महेता - कलकत्ता
श्री खुशालचंद वनेचंद शाह - कलकत्ता
श्री रसीकलाल वाडीलाल शाह - कलकत्ता
श्री कस्तूरचंद नानचंद शाह - कलकत्ता
श्री भंछालाल शामजी जोगाणी - कलकत्ता
श्री गुलाबचंद ताराचंदजी कोचर - नागपुर
श्री नटवरलाल पोपटलाल महेता - नागपुर
श्रीमती समजुबेन मणीलाल दोशी परिवार - नागपुर
श्री प्रवीणचंद्र वालचंदजी शेठ (डीसावाला) - नासिक
श्री चंद्रशेखर नरेंद्रकुमार चोपडा - वरोरा
श्री सुभाषकुमार वाडीलाल शाह - कराड
श्रीमती हसमुखबेन जयंतीलाल शाह (पृथ्वी) - वापी
श्री विनोदभाई मणिलाल शहा - अमदावाद
स्व. रंभाबेन त्रिकमलाल संघवी, हस्ते - महेन्द्रभाई - साणंद

आ धर्मानुरागी महानुभावोनी अमे हार्दिक अनुमोदना करीओ छीओ.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री विजयमहोदयसूरि ग्रंथमाला

१

ऐं

प्रवचन प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org